R.N.I. No. 2321/57

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

जुलाई 2015

अंक 6

तपोभूमि

मासिक

श्री सुरेश चन्द्र प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा गुजरात प्रदेश सम्बोधित करते हुये।
मंच पर श्री अशोक अग्रवाल अहमदाबाद, श्री अरूण जी अहमदाबाद, श्री दिनेश चन्द्र जी अहमदाबाद, श्री सुनील शर्मा, श्री अरूण मित्तल, श्री प्रेम सिंह जादौन, श्री भगत सिंह वर्मा

आर्यवीर दल उत्तर प्रदेश का प्रान्तीय प्रशिक्षण शिविर सहर्षोल्लास सम्पन्न

आर्य वीर दल उत्तर प्रदेश का प्रान्तीय प्रशिक्षण शिविर आचार्य स्वदेश जी महाराज प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के पावन सान्निध्य तथा सुरेशचन्द्र अग्रवाल, गोपीनाथ वंशीधर फाउण्डेशन की अध्यक्षता में 19 जून से 28 जून 2015 तक गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन के प्रांगण में हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हुआ। जिसमें प्रदेश के 36 जनपदों व 6 प्रान्तों के 347 आर्य वीरों ने भाग लिया। जिसका उद्घाटन अन्तर्राष्ट्रिय योग दिवस 21 जून को प्रज्ञा पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड के डायरेक्टर राजेश गोयल तथा ध्वजारोहण मित्तल प्रकाशन के डायरेक्टर अरुण मित्तल ने किया। उद्घाटन में सभा प्रधान आचार्य स्वदेश जी महाराज ने कहा कि शिविर में बच्चों का सर्वांगीण विकास किया जाता है। यहाँ बच्चों में राष्ट्र प्रेम, परोपकार, सत्यनिष्ठा, आत्म सुरक्षा, ईमानदारी आदि के गुण विकसित किये जाते हैं। आचार्य जी ने समाज में फैली बुराईयां जैसे भ्रष्टाचार, चोरी, झूठ, विलासिता से दूर रहने के लिए प्रेरित किया।

अहमदाबाद से पधारे शिविर के शिविराध्यक्ष श्री सुरेशचन्द्र अग्रवाल ने शिविर समापन पर बोलते हुए कहा कि आधुनिक भारत का निर्माण आर्यवीरों द्वारा किया जा सकता है। इन युवकों की तपस्या देखकर मुझे गर्व का एहसास हो रहा है। आर्यवीरों का प्रदर्शन देखकर मैं कह सकता हूँ कि इन युवाओं के हाथ में आर्य समाज एवं राष्ट्र सुरक्षित है। अर्थात् आर्यवीर हैं जहाँ आर्यसमाज है वहाँ।

फरीदाबाद से माननीय श्री कृष्णवीर जी शर्मा एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सरोज शर्मा ने उपस्थित होकर आर्यवीरों को आशीर्वाद प्रदान किया। माननीय शर्मा जी ने बोलते हुए कहा कि राष्ट्र के निर्माण में नई पीढ़ी का महत्वपूर्ण योगदान होता है। उसके ठीक ढंग से निर्माण में राष्ट्र निर्माण होता है। आर्यवीर दल इस क्षेत्र में बहुत ही तत्परता से काम कर रहा है। इस कार्य में जो भी आवश्यकता होगी उसे हम यथाशक्ति पूरा करने को तैयार हैं आर्यवीरों ने उनके इस आश्वासन का करतल ध्वनि से स्वागत किया।

आर्य उप प्रतिनिधि सभा मथुरा के प्रधान पं0 विपिनबिहारी जी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि आज के युवक पश्चिमी सभ्यता से प्रेरित हो हमारी प्राचीनतम संस्कृति एवं सभ्यता को भूलते जा रहे हैं। समाज में दूषित रहन–सहन व धूम्रपान का चलन बढ़ा हुआ है। जिससे युवक चरित्रहीन

–शेष पृष्ठ सं. 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–61 संवत्सर 2072 जुलाई 2015 अंक 6

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

जुलाई 2015

सृष्टि संवत्
1960853116

दयानन्दाब्दः 192

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
दयानन्द दिग्विजयम्	–आचार्य मेधाव्रत	5–8
योगेश्वर कृष्ण	–पं0 चमूपति	9–11
दोनों का संसार	–चौ0 रामस्वरूप आजाद	12
ईश्वर ने दुनियां क्यों बनाई	–पं0 रामचन्द्र देहलवी	13–16
पथिक	–रामनरेश त्रिपाठी	17–19
पूजा–धर्म	–महात्मा हंसराज	20–21
साधारण कार्य और कर्तव्य	–ठा0 कल्याणसिंह शेखावत	22–25
आर्य जीवन	–पं0 राजाराम प्रोफेसर	26–29
सत्य भाषण	–प्रो0 सुधाकर	30–31
सच्ची बात	–महाकवि शंकर	32
गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन में प्रवेश प्रारम्भ		33
श्री विरजानन्द आर्ष गुरुकुल वेदमन्दिर, मथुरा का वार्षिक उत्सव		34

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

डॉ० रामनाथ वेदालंकार

गृहस्थ–लोक का एक चित्र

यत्रा सुहार्दां सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः।
तं लोकं यमिन्यभि संबभूव सा नो मा हिंसीत्पुरुषान्पशूंश्चं।। –अथर्व० 3.28.6

शब्दार्थः–

(यत्र) जहाँ (सुहार्दाम्) शुभ हृदयवालों का, सौहार्दवालों का, शुभ कर्म करनेवालों का, और (यत्र) जहाँ (अग्निहोत्रहुताम्) अग्निहोत्र करनेवालों का (लोकः) लोक है, (तं लोकम्) उस पतिलोक में (यमिनी) यम–नियमों का पालन करनेवाली, नियन्त्रण में रहनेवाली यह वधू (अधि संबभूव) प्रविष्ट हुई है। (सा) वह (नः) हमारे (पुरुषान्) पुरुषों को (पशून् च) और पशुओं को (मा हिंसीत्) कष्ट मत दे।

भावार्थः–

हे पुत्री ! तू पितृलोक से विदा लेकर पतिलोक में प्रविष्ट हुई है। यह मत समझना कि यहाँ पिता, माता, भाई, बहिन आदि के सदृश प्यार देनेवाला और सब बातों के लिए तेरी चिन्ता करनेवाला कोई नहीं है। यह भी पितृलोक के ही समान परस्पर सौहार्द रखनेवालों का लोक है। यहाँ भी हृदय से हृदय मिलते हैं, हृदय के तार दूसरे हृदय के लिए झंकृत होते हैं, यहाँ के सदस्य भी दूसरे के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होते हैं। यहाँ भी दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति माननेवालों का और दूसरे की पीड़ा को अपनी पीड़ा माननेवालों का निवास है। यहाँ भी परस्पर आकर्षण है, प्रीति है, मनमोहक स्वभाव है, स्नेहिल आँखें हैं, वाणी और मन का माधुर्य है, प्रेम की पुचकार है। यह कहने में भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यहाँ तुझे पितृलोक से भी अधिक स्नेह और सम्मान प्राप्त होगा। यह पितृलोक सुकर्मकर्ताओं का भी लोक है। यहाँ के सब सदस्य न केवल कर्मपरायण हैं, अपितु सबके सम्मुख शोभन कर्मों या पुण्यकर्मों का आदर्श है। साथ ही जिसका जो कार्य है, उसे वह सुन्दरता के साथ करता है। 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' का गीत न केवल अधरों पर रहता है, अपितु कर्तृव्य में भी आता है। तीसरी बात यह है कि इस पितृलोक के सब सदस्य अग्निहोत्र करनेवाले हैं। सायं–प्रातः अग्नि में होमे हुए घृत तथा सुगन्धित, मिष्ट, पुष्टिकर एवं रोगहर हव्यों की आहुति वातावरण को शुद्ध–पवित्र करती है। साथ ही हे बेटी! तू भी हमारे सौभाग्य से ऐसी मिली है, जो सर्वगुणसम्पन्न है। तुझे वेद ने 'यमिनी' कहा है, तू योग के अंगभूत सब यम–नियमों का पालन करनेवाली है। तू अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप यमों की साक्षात् मूर्ति है, तू शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान की देवी है। तू संयम में रह सकनेवाली है। हम आशा करते हैं कि इस पतिगृह में रहती हुई तू किसी भी स्त्री–पुरुष का दिल नहीं दुखायेगी, घर के गाय, बछड़े, बछियों आदि को भी कोई कष्ट नहीं होने देगी। हम तेरा स्वागत और अभिनन्दन करते हैं। ❀❀❀

गतांक से आगे–

दयानन्द दिग्विजयम्

लेखकः आचार्य मेधाव्रत

एकादशः सर्गः

पंचषान् स दिवसान् मुनिहंसः कृष्णदुर्गजनतां जनधर्मान्।
वेदशास्त्रविहितान् हितकामोवेदयन्नुषितवान् निरपेक्षः॥ 126॥

निरपेक्ष परमहंस दयानन्द पांच छ दिन वहीं ठहर गये, और उन्होंने कल्याण चाहते हुए किशनगढ़ की जनता को मानवधर्म और वेदशास्त्रविहित मत का उपदेश दिया॥ 126॥

विश्रुतोऽथ गतवानजमेरं विश्रुतं स नगरं नगरम्यम्।
वर्णवासरमुवास सुतीर्थं पुष्करं विमलधीरथ यातः॥ 127॥

विख्यात प्रभावशाली स्वामीजी यहाँ से गिरिमाला के कारण मनोहर प्रसिद्ध अजमेर नामक नगर में आये यहाँ चार दिन रहकर पवित्रान्तःकरण मुनिवर दयानन्द पुष्करतीर्थ पहुँच गये॥ 127॥

ब्रह्मदेवपरिपूजनमस्मिन् केवलं भवति भारतवर्षे।
ब्रह्ममन्दिरमुपेत्य ततोऽयं तत्र वासमकृतोत्तमशीलः॥ 128॥

सम्पूर्ण भारत में केवल मात्र पुष्कर में ही ब्रह्माजी की पूजा होती है। इसलिये पवित्र–चरित्र स्वामीजी भी ब्रह्मा के मन्दिर में आकर रह गये॥ 128॥

प्रतिमार्चनखण्डनं बलाद् व्यदधाद्वैष्णवमार्गभंजनाम्।
द्विजमण्डलमानसाम्बुधिः क्षुभितः खण्डनचण्डवायुना॥ 129॥

यहाँ स्वामीजी ने बलपूर्वक मूर्तिपूजा और वैष्णव मत का खण्डन शुरु किया। इस खण्डनरूप प्रचण्ड आँधी से ब्राह्मण मण्डल का हृदय–सागर क्षुब्ध हो उठा॥ 129॥

तर्कशास्त्रचणशास्त्रिवरेण व्यकटेन गिरिकन्दरभाजा।
चर्चितुं स्वयमयं यमिराजः प्राप भागवत एतदुपान्तम्॥ 130॥

यहाँ एक व्यंकट शास्त्री नामक पण्डित न्याय के बड़े भारी विद्वान् थे, जो एक गुफा में रहा करते थे। स्वामीजी स्वयं ही इनसे भागवत–मत पर चर्चा के लिये उनके पास पहुँच गये॥ 130॥

प्रचण्डतर्कैः प्रबलैः प्रमाणैः स खण्डयन्भागवतं मतं तत्।
प्रचण्डतेजा नयपण्डितं तं पराभवद् व्याकरणेऽपि तीव्रम्॥ 131॥

स्वामीजी ने प्रचण्ड तर्कों से और प्रबल प्रमाणों द्वारा भागवत–सम्प्रदाय की धज्जियाँ उड़ा दी।

आदित्यसम तेजस्वी आदित्य ब्रह्मचारी ने न्यायशास्त्र के इस पण्डित को व्याकरण में बुरी तरह से परास्त कर दिया॥ 131॥

स्वीकृत्य सत्यं यतिनः स पक्षं प्रशस्तविद्यामभिनन्द्य धीमान्।
'ब्रवीति तथ्यं यतिरेष सर्वे' सर्वान् द्विजानित्यवदद् विनम्र॥ 132॥

श्रीव्यंकट शास्त्री ने दयानन्द का सत्यपक्ष स्वीकार करके उनकी प्रशस्त विद्या का अभिनन्दन किया और नम्र होकर सब ब्राह्मणों से कहा कि-ये संन्यासी जो कुछ कहते हैं, सब सच है॥ 132॥

निन्ये मुनिं स्वस्य गुरोः सकाशं घोरस्य घोराचरणस्य शास्त्री।
संभाष्य गीर्वाणगिरा गुरु र्ज्ञः सताऽमुनैनं प्रशशंस गोष्ठ्याम्॥ 133॥

फिर ये महानुभाव स्वामी जी को अपने गुरु के पास ले गये, जो भयंकर घोरपंथी थे परन्तु न्यायशास्त्र में निष्णात थे। ये स्वामीजी के साथ देर तक संस्कृत भाषा में बातचीत करते रहे॥ 133॥

मैत्रीं प्रपन्नस्य मुनेस्तदानीं नैयायिकस्वामिनमित्यगादीत्।
'शास्त्रार्थकाले मदपेक्षिता चेत् सहायतायै स्मरणीय एषः॥ 134॥

नैयायिक व्यंकटशास्त्री स्वामीजी के परम मित्र बन गये और इन्होंने स्वामीजी से कहा कि-किसी भी शास्त्रार्थ में यदि मेरी आवश्यकता हो तो आप मुझे अवश्य स्मरण करें, मैं एकदम उपस्थित हो जाऊंगा॥ 134॥

तीर्थप्रसंगेन हि संगतानां तदा जनानां विपुलोत्सवोऽभूत्।
तस्मिन् कुरीतिव्रतदम्भनुत्त्यै व्याख्यातवान् ख्यातयशा निकामम्॥ 135॥

उस समय पुष्कर में एक बहुत बड़ा मेला लगा था। तीर्थमेला होने के कारण बहुत जनता जमा हो गई थी। इस मेले में विख्यात यशस्वी स्वामीजी ने अनेक सामाजिक कुरीतियों एवं धार्मिक दम्भों का खण्डन करते हुए उपदेश दिया॥ 135॥

मृकण्डुवंशस्य ऋषेर्गुहायाआनीतभूत्या स्वतनूं व्यलिम्पत।
अनीलमाणिक्यविशालिमध्यां रुद्राक्षमालां स गले बभार॥ 136॥

मृकण्डुवंश के एक ऋषि की गुफा में से स्वामीजी भस्म लाकर अपने शरीर पर लगाया करते थे और उन दिनो स्फटिकमणि से युक्त रुद्राक्षमाला पहना करते थे॥ 136॥

सन्तोषशान्ती हृदये तितिक्षां सारल्यमस्यास्तुवतैव सन्तः।
विद्वद्वराः पण्डिततामहत्तामसंतर्षैरपि मुक्तकण्ठम्॥ 137॥

संतगण ऋषि दयानन्द के संतोष, शान्ति, तितिक्षा, सरलता आदि गुणों की प्रशंसा किया ही करते थे, किन्तु महान् विद्वद्वर भी मुक्त-कंठ से इनके पाण्डित्य की महत्ता को स्वीकार करते थे॥ 137॥

दयानन्दवचोवातैः साम्प्रदायिकसागरः।
आन्दोलितविचारोर्मिश्चुक्षुभे भ्रमवार्भ्रमैः॥ 138॥

दयानन्द के वचनरूपी आँधी से सांप्रदायिक समुद्र में विचार के तरंग एवं भ्रान्ति की भँवर पैदा हो गई॥ 138॥

पूर्णिमामेलवेलायां तुलसीमालिका गलात्।

लोका निस्सारयामासुः शतशो मुनिबोधनात्॥ 139॥

मुनिवर दयानन्द के वचनामृत से उस पूर्णिमा के मेले में आये हुए सैकड़ों लोग अपने गलों से तुलसी की मालाएँ उतार फेंकने लगे॥ 139॥

धावमाना ययुर्विप्रा व्यंकटस्यान्तिकं बुधः।

व्याजह्रुः स्वामिसंबोधाल्लोकचित्तविवर्त्तनम्॥ 140॥

ब्राह्मण लोग इस घटना से घबराकर व्यंकट शास्त्री के पास दौड़े और स्वामीजी के उपदेशों से जनता के हृदय-परिवर्तन का हाल सुनाया॥ 140॥

मुनीन्द्रेण समं वादं कर्त्तुं नास्मि प्रभुर्द्विजाः।

सत्यमेव वदत्यार्यः शास्त्री तानित्युवाच सः॥ 141॥

व्यंकट शास्त्री ने ब्राह्मणों से कहा कि-हे द्विजो! मैं मुनीन्द्र दयानन्द के साथ शास्त्रार्थ करने को तैयार नहीं हूँ, क्योंकि वे जो कुछ कहते हैं सच ही कहते हैं॥ 141॥

ब्रह्मदेवगृहपूजकोत्तमोमानपुर्यभिधयाऽथ विश्रुतः।

मित्रतामुपगतः स योगिनः पुष्टदेहरुचिरो बलीश्वरः॥ 142॥

ब्रह्मदेव के मन्दिर के महन्त का नाम मानपुरी था, इनका शरीर बड़ा ही हृष्टपुष्ट एवं बलिष्ठ था। ये स्वामीजी के मित्र बन गये॥ 142॥

अपाययद् दुग्धमयं यतीश्वरं सहायकोऽभूदनिशं महात्मनः।

विवादकाले कलहप्रियान् द्विजानतर्जयद् दण्डधरान् स दण्डिना॥ 143॥

ये यतीश्वर दयानन्दजी को खूब दूध पिलाया करते थे और हमेशा शास्त्रार्थ के समय में स्वामीजी के सहायक रहा करते थे। दण्डा चलानेवाले, झगड़ालु ब्राह्मणों को ये धमकाकर भगा दिया करते थे॥ 143॥

पूजकं शिवदयालुमप्ययं मूर्त्तिपूजनविधेरहापयत्।

आश्रवः श्रुतवतो द्विजस्ततः पत्रकार्यगृहसेवकोऽभवत्॥ 144॥

स्वामीजी ने शिवदयालु नामक एक पुजारी को मूर्त्तिपूजा से छुड़ा दिया। श्रुतज्ञ स्वामीजी की आज्ञा का पालक यह ब्राह्मण पीछे से पोष्ट ऑफिस में नौकर हो गया॥ 144॥

केन नाम्नेश्वरस्याहं करवै जपमित्ययम्।

सच्चिदानन्दमामुं पृष्टो मुनिरवेदयत्॥ 145॥

एक बार इस ब्राह्मण ने स्वामीजी से पूछा कि-मैं ईश्वर का जप किस नाम से किया करूँ? तब स्वामीजी ने कहा कि 'सच्चिदानन्द' शब्द से जप करो॥ 145॥

शिवस्य विष्णोः प्रतिमार्हणां मणिः सतां न्यषेधीदनिशं मनीषिणाम्।
निराकृतेरीशितुरेव शंकरीमुपासनामादिशदर्हतां वरः।। 146।।

पूजनीय मनीषियों में श्रेष्ठ संत शिरोमणि स्वामीजी शिव एवं विष्णु की मूर्तिपूजा का निषेध करते ही रहते थे और कल्याणकारी निराकार ईश्वर की उपासना का उपदेश दिया करते थे।। 146।।

मूर्त्ति दृष्टवा ब्रह्मणः संनिवृत्ता वृद्धा देवी योगिनं द्रष्टुमायात्।
पप्रच्छायं त्वं कुतो मातरायावीक्ष्य ब्रह्मायामि सा प्रत्यवोचत्।। 147।।

एक बार एक वृद्धा स्त्री ब्रह्मा की मूर्त्ति के दर्शन से लौटकर स्वामीजी के दर्शन करने आई।। 147।।

ब्रह्मा किंचिदुपादिशन्नु भवतीम्।
ओमित्यसौ प्राब्रवीद्उत्थाय द्रुतमासनान्मुनिरतो यात्वा समं वृद्धया।।
मूर्त्तेरन्तिकमुक्तवानयममूं मूर्तिं वदाभाषितुम्।
मूकाश्चेद् विबुधास्तवाग्रत इयं केत्यभ्यधात्सस्मितम्।। 148।।

स्वामीजी ने पूछा माता! तुम कहाँ से आ रही हो? उसने कहा कि–मैं ब्रह्मा का दर्शन करके आ रही हूँ। 'क्या ब्रह्माजी ने आपको कुछ उपदेश दिया? वह बोली हाँ। स्वामीजी झट उठकर उस वृद्धा के साथ मूर्त्ति के पास जाकर उससे बोले कि, माता! मूर्ति को बोलने के लिये कहो; बुढ़िया हँसकर बोली–स्वामीजी महाराज, आपके सामने तो बड़े–बड़े विद्वान् भी चुप हो जाते हैं, तो इस मूर्त्ति की तो क्या बात?।। 148।।

ब्रह्मदेवालये पुष्करे ब्रह्मविद् ब्रह्मवृन्दे सदा ब्रह्मतत्त्वं दिशन्।
ब्रह्मचर्यप्रभावं च विख्यापयन् ब्रह्मचारी तदोवास मासद्वयम्।। 149।।

ब्रह्मवित् ब्रह्मचारी दयानन्द पुष्कर के ब्रह्म–मंदिर में ब्राह्मणों की सभा में ब्रह्मतत्व का उपदेश देते हुए एवं अपने ब्रह्मचर्य के प्रभाव को दिखलाते हुए दो मास रह गये।। 149।। ❆❆❆

महापुरुषों की जयन्ती		महापुरुषों की पुण्यतिथि	
डॉ0 श्यामाप्रसाद मुखर्जी	6 जुलाई	राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन	1 जुलाई
मंगल पाण्डे	19 जुलाई	स्वामी विवेकानन्द	4 जुलाई
चन्द्रशेखर आजाद	23 जुलाई	भाई महाराजसिंह	5 जुलाई
लोकमान्य बालगंगाधर तिलक	23 जुलाई		
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	29 जुलाई	कारगिल युद्ध	26 जुलाई
मुंशी प्रेमचन्द	31 जुलाई	गुरू पूर्णिमा	31 जुलाई

सत्साहित्य का प्रचार–प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

योगेश्वर कृष्ण

यादव वंश का नाश

जवनि का–पतन

लेखकः पं. चमूपति

श्रीकृष्ण ने अपने जीवन का उद्देश्य अपनी आँखों के सामने पूरा होता देख लिया। महाभारत के युद्ध के पश्चात् छत्तीस वर्ष ये और जीते रहे। युद्ध की क्षतियों को इस दीर्घ समय में देश की नैसर्गिक शक्ति ने पूरा कर ही लिया होगा। इस विषय पर 'महाभारत' द्वारा कोई प्रकाश नहीं पड़ता। हमारे विचार में महाभारतकार का इस ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य अश्वमेध पर आकर सिद्ध हो चुका है। काव्यशास्त्र के नियमानुसार काव्य की समाप्ति सुखान्त होनी चाहिए और अश्वमेध पर 'महाभारत' की समाप्ति सुखान्त ही है। परन्तु न जाने क्यों, आगे के पर्वों में शोक की, दुःख की, निर्वेद की पराकाष्ठा पाई जाती है। 'महाभारत' का यह भाग सर्वसंहार, वस्तु–मात्र के प्रलय का रोमांचकारी दृश्य चित्रित करने के लिए लिखा गया प्रतीत होता है। सम्पूर्ण 'महाभारत' के अध्ययन से जो उत्साह–प्रवृत्ति–परक धर्म की लगन पैदा होती है, वह अन्त के पर्वों में सब पदार्थों, सब वैभवों को नाशोन्मुख देखकर उत्साहहीन नैष्कर्म्य ही में परिवर्तित हो जाती है। नाश होनेवाले कुलों में यादवों का आपस में लड़कर नष्ट हो जाना एक हेतुयुक्त घटना है। जब तक जरासन्ध का डर था, तब तक यादव योद्धाओं में परस्पर प्रेम था, सुशीलता थी, सज्जनता थी, सहृद्–भाव था। द्वारवती में सुरक्षित होते ही धीरे–धीरे इनका जीवन भोगमय होने लगा। निर्भीकता आलस्य लाई। युधिष्ठिर के साम्राज्य ने इन्हें और भी निश्चिन्त कर दिया। स्वतन्त्रता का जो प्रेम पहले राष्ट्र की रक्षा में उपयुक्त होता था, अब राष्ट्र की रक्षा के लिए प्रयत्न की अपेक्षा न रहने से उस स्वतन्त्रता–प्रेम का उपयोग आपस के कलह, वैयक्तिक जीवन की उद्दण्डता, सामाजिक नियन्त्रण के विरुद्ध विद्रोह, राष्ट्र के नियमों के खुले अतिक्रमणों में होने लगा। युद्ध के दिनों में इस कुल के आचार–व्यवहार की प्रशंसा इन शब्दों में की गई थी–

''वृद्धों की आज्ञा में चलते हैं। अपने सजातीयों का अपमान नहीं करते। ......धनवान् होकर भी अभिमानरहित हैं। ब्रह्म के उपासक तथा सत्यवादी हैं। समर्थों का मान करते हैं। दीनों को सहायता देते हैं। सदा देवोपासना में रत, संयमी और दानशील रहते हैं। डींगें नहीं मारते। इसीलिए वृष्णिवीरों का राज्य नष्ट नहीं होता। इसके विपरीत एक चौथाई शताब्दी ही के अन्तर पर हम वृष्णिकुमारों को ऋषिगणों का उलटा उपहास करते देखते हैं। एक पुरुष के पेट में मूसल बाँध ऋषियों से वे पूछते हैं–''इस देवी के लड़का

पैदा होगा या लड़की?''

ज्यों-ज्यों समय बीता, त्यों-त्यों यादव अधिकाधिक उच्छ्रंखल होते चले गए। किसी भी पाप के करने में उन्हें लज्जा न रही। ब्राह्मणों, देवताओं, वृद्धों, पितृगणों तथा गुरुओं का अपमान करने लगे। पति-पत्नियों में प्रेम तो क्या, एक-दूसरे का लिहाज ही न रहा।

मद्यपान की यादवों को बड़ी लत थी। सौभनगर के राजा शाल्व की चढ़ाई के समय इसकी मनाही ही कर दी गई थी। एक बार फिर आहुक, बभ्रु, कृष्ण और बलराम-इन सबके नामों से राष्ट्रभर में विज्ञप्ति कराई गई कि 'मद्य-निर्माण राजाज्ञा द्वारा वर्जित है। आज के पीछे जो मद्यपान करेगा उसे बन्धनों-सहित प्राणदण्ड दिया जाएगा।' इस विज्ञप्ति से कुछ समय तक मद्य का प्रयोग रुक गया। परन्तु बाद में उच्छ्रंखल यादवों ने इस व्यसन का अभ्यास और बढ़ा लिया। एक दिन प्रभास नगर में-जो द्वारका का तीर्थ था-सभी यादव इकट्ठे हुए समुद्र के किनारे बैठे नाच-रंग देख रहे थे। शराब का दौर चल रहा था। इतने में सात्यकि ने कृतवर्मा पर यह कहकर फब्ती उड़ाई-''रात के समय सोयों का संहार करनेवाले बहादुर ये हैं!'' प्रद्युम्न ने इस फब्ती को दोहरा दिया। कृतवर्मा ने उत्तर में कहा-''योगावस्थित का सिर काटनेवाले ये हैं!'' सात्यकि अपने आपे में तो था नहीं। उसने झट तलवार उठाई और कृतवर्मा का सिर काटकर रख दिया। इस पर दो पक्ष हो गए। अन्धक और भोज सात्यकि के विरुद्ध हो गए। प्रद्युम्न ने सात्यकि का पक्ष लिया। दम-के-दम में दोनों दलों ने तलवारें सूँत लीं और एक-दूसरे पर टूट पड़े। इस मुठभेड़ ही में सारे कुल का नाश हो गया।

कृष्ण यादवों की उच्छ्रंखलताओं से तंग तो रहते ही थे। यह भी उन्हीं की नीति-निपुणता का फल था कि यादववंश का ऐसा भयंकर अन्त इससे पूर्व न हुआ, हमेशा टलता ही रहा। अब श्रीकृष्ण ने पानी सिर से गुजरता देखा। हस्तिनापुर में ये साम्राज्य तो स्थापित कर ही चुके थे। सुभद्रा की सन्तान अभिमन्यु का लड़का परीक्षित पैदा होकर युधिष्ठिर का उत्तराधिकारी निश्चित हो चुका था। श्री कृष्ण अपने वंश का नामलेवा भी उसी परीक्षित ही को समझ सन्तुष्ट थे। जरासन्ध से यादवों की रक्षा की जा चुकी थी। जरासन्ध के झूठे साम्राज्य के स्थान पर युधिष्ठिर का मृदु सुन्दर साम्राज्य स्थापित कर दिया गया था। उसकी छत्र-छाया में यादवों का संघ फल-फूल सके, मुरझा न जाय, इसका प्रबन्ध पूर्णतया किया जा चुका था। परन्तु यदि यादवों की करनी ही कुछ ऐसी हो कि पाशविक बल का साम्राज्य हो तो भी, और अपने अधीन प्रत्येक राज्य को प्रीतिपूर्वक आत्म-निर्णय का अधिकार प्रदान करनेवाला धार्मिक साम्राज्य हो तो भी, इनका नाश होना अवश्यम्भावी हो तो कृष्ण की बुद्धिमत्ता इसमें क्या करे?

इस प्रकार एक अंश में पूर्ण सफल और दूसरे अंश में पूर्ण निराश, अर्थात् दोनों अंशों में पूर्ण प्रयन्त कर-सम्पूर्ण साध्य संकल्पों से निवृत्त हो, श्री कृष्ण ने वानप्रस्थ ले लिया और ज्ञान-ध्यान में मस्त रहने लगे। इसी अवस्था में एक दिन किसी दूर खड़े शिकारी के तीर से घायल हो प्राण छोड़ने को उद्यत ही थे कि वह बेचारा भ्रान्ति का मारा चरणों में आ पड़ा। उसे पश्चात्ताप था कि किस महात्मा को मृग

समझा, उसके पवित्र प्राणों का घातक हुआ हूँ। श्री कृष्ण ने हँसते-हँसते उसे अभय-दान दिया, उसका अनजाने में किया अपराध क्षमा किया और इस उदारतम मनोवृत्ति को धारण किये प्राण त्याग दिये। यह मनोवृत्ति उनके अपने कहे गीता के आदर्श के सोलहों आने अनुकूल थी। वे पूर्ण स्थितप्रज्ञ थे। जिये तो शत्रुओं पर विजय पाते रहे। मरे तो मृत्यु पर विजय पाई? हैं? क्या सचमुच श्री कृष्ण की मृत्यु हुई? वे तो अमर हैं। इतिहास के पन्नों में, भक्तों के हृदयों में, देश-विदेश की पीढ़ी-पर-पीढ़ी चल रही देवमालाओं की अद्‌भुत कथाओं में श्री कृष्ण अमर हैं। भारत की संस्कृति के साथ-साथ, राजा और प्रजा दोनों की हितसाधक साम्राज्य-नीति के साथ-साथ, वे अमर हैं। जहाँ राजाओं के ''परम दैवत'' होने के सिद्धान्त का खण्डन होगा, वहाँ कृष्ण का नाम आएगा। जहाँ ऐसे राज्य की चर्चा होगी जिसके नीचे प्रत्येक राष्ट्र अपनी आन्तरिक नीति में स्वतन्त्र हो, वहाँ कृष्ण की पुण्य स्मृति को अर्घ्य दिया जायगा। कृष्ण ने यह सब कुछ तो किया ही, सारे साम्राज्य के कर्ता-धर्ता भी कृष्ण ही थे; परन्तु उनका महत्व इन सारी सफलताओं से अधिक इस बात में था कि आरम्भ से अन्त तक सारी लीला का सूत्रधार होते हुए भी स्वयं लीला से अलग-थलग खड़े साक्षी बने साधारण जनों की तरह तमाशा देखते रहे। पूजा के अधिकारी वे इस पराकाष्ठा के थे कि उनका नाम ही अपने पूर्वजों की तरह दाशार्ह-अर्घ्य देने लायक-हो गया था। परन्तु जब अश्वमेध के समय साम्राज्य की नींव पक्की हुई, उसका भव्य भवन अविचल रूप से खड़ा हो गया, तो अर्घ्य दिये जाने का विरोध उन्होंने स्वयं कर दिया और इस विरोध में भी पूर्वाभास के अनुसार अर्जुन के एलची हुए। निर्मम होने का श्रेय भी तो नहीं लिया। यह वास्तविक निर्ममता की पराकाष्ठा थी। फिर यदि शिकारी को अपने प्राणों कीं हत्या के लिए क्षमा कर दिया हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? क्षत्रिय के लिए वन में मरना उतना ही श्रेयस्कर है जितना रणक्षेत्र में। शास्त्रानुसार यह गति भी वीरगति ही है।

अर्जुन ने उनके देह का दाह कराया। चन्दन और विविध प्रकार के सुगन्धित द्रव्य चिता पर डाले गए। इससे चिता महक उठी। परन्तु कृष्ण की विशेष महक उनके सत्कार्यों की अमरकीर्ति थी, जो अब तक चारों ओर फैल रही है और संसार में धार्मिक शासन की आवश्यकता के साथ-साथ फैली रहेगी। ❁❁❁

पाठकों से नम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2014 का शुल्क अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष 2015 के वार्षिक शुल्क सहित शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को भेजकर जमा करायें ताकि पत्रिका सुचारू रूप से आपको प्राप्त होती रहे।

—व्यवस्थापक

दोनों का संसार

रचयिताः- चौ० रामस्वरूप आजाद

नर नारी दोनों के ऊपर, दोनों का आधार।
एक दूसरे बिना अधूरा, दोनों का संसार॥

शारीरिक रचना, प्रवृत्तियाँ, रुचि दोनों की न्यारी।
किन्तु भिन्नता यह दोनों की, है दोनों को प्यारी॥
इसी भिन्नता में हो जाते दोनों एकाकार।
एक दूसरे बिना अधूरा दोनों का संसार॥

नारी निज घर त्याग, पुरुष के घर को आन बसाती।
तज कर निज परिवार, नया परिवार यहाँ पर पाती॥
और बनाती उसको अपना, तन-मन-धन सब बार।
एक दूसरे बिना अधूरा दोनों का संसार॥

नर को तो संघर्ष युक्त, अति कठिन क्षेत्र बाहर का।
नव रचना निर्माण जहाँ है, नारी को वह घर का॥
स्वयं प्रकृति ने किया विभाजन रुचि व शक्ति अनुसार।
एक दूसरे बिना अधूरा, दोनों का संसार॥

छोटा और बड़ा नहिं कोई, है समान दोनों ही।
एक दूसरे का श्रद्धा से, मान करें दोनों ही॥
है समान कर्त्तव्य कर्म सब, हैं समान अधिकार।
एक दूसरे बिना अधूरा, दोनों का संसार॥

कंधे से कंधा व कदम से कदम, मिला कर दोनों।
पहुँच सकेंगे मंजिल पर, चल एक मार्ग पर दोनों॥
काँटें भी तब फूल बनेंगे, हल्का होगा भार।
एक दूसरे बिना अधूरा, दोनों का संसार॥

गृहस्थ जीवन सफल नहीं, अच्छा साथी पाने से।
होता सफल स्वयं ही, अच्छा साथी बन जाने से॥
जीत छिपी है जहाँ हार में, और जीत में हार।
एक दूसरे बिना अधूरा, दोनों का संसार॥

❃❃❃

गतांक से आगे–

ईश्वर ने दुनियां क्यों बनाई?

लेखकः प० रामचन्द्र देहलवी

(हीगल फिलासफर) Hegal Philosopher ने कहा था कि "What so ever is, is according to reason and whatever is according to reson. that is?"

जो अकल के मुताबिक है वह है और जो है वह अक्ल के मुताबिक है पहिले 'है' को देख लीजिये अक्ल के मुताबिक है कि नहीं? क्या जीवात्मा जगत् में मौजूद हैं? शरीर परमात्मा दिये हुए हैं और वह जीवात्मा उस शरीर के द्वारा कुछ न कुछ रात दिन हासिल करता है, कोई धन हासिल करता है। कोई शोहरत हासिल करता है, कोई इल्म हासिल कर रहा है। हासिल कर रहा है, रात दिन हासिल कर रहा है। और ज्यादा से ज्यादा हासिल करने में लगा हुआ है। क्योंकि जीवात्मा के उनके पास कमी है।

एक ओर तो सारे जीवात्माओं को रख लीजिये दूसरी ओर प्रकृति है। प्रकृति उन जीवात्माओं का साधन है, (Instrument) है। इनका वह औजार है। उन औजारों से जीवात्मा आगे काम करता है।

एक शख्स बाइसिकल पर चला आ रहा है, बाइसिकल उसका औजार है। किससे बना है? प्रकृति से Matter से। तो इस वास्ते कहते हैं कि तीन चीजें हैं (1) माद्दा (प्रकृति), (2) जीवात्मा और (3) परमात्मा।

परमात्मा ने जीवात्मा के लिये प्रकृति से जगत् बनाया फिर सुन लीजिये परमात्मा ने जीवात्मा के लिये प्रकृति से जगत् बनाया या उत्पन्न किया और कहा कि तुम इस साधन से तरक्की करो जहाँ तक तुममें योग्यता है। मैं तुम्हारा सहारा बनूँगा और बना हुआ हूँ। अनादि काल से अनन्त काल तक बराबर मैं तुम्हारा सहारा बना रहूंगा और उस सहारे से तरक्की करते चले जाओ तो क्या बात है?

वह दुनियां जो है वह तीन चीजों से बनी हुई है और ये तीन चीजें वहीं हैं जैसा Hegal Philosopher ने कहा What so ever is, is according to reason and what is according to reason that is" वह क्या है? दुनियां में शुरू से ही अर्थात् शुरू कब से जबसे दुनिया बनी है–क्या कोई वक्त ऐसा भी था जब दुनिया नहीं थी–नहीं यह मतलब नहीं है।

कहने का मतलब यह है कि जबसे यह दुनियां का सिलसिला चला आ रहा है, आप देखेंगे कि ये तीन ही चीजें हैं ईश्वर, जीव और प्रकृति। और इन तीन चीजों को ही आप बराबर देखते चले जाइये।

आप बाजार में चले जाइये, तो वहां क्या मिलेगा? दुकानदार, खरीददार और चीज। लेकिन अगर वहां ऐसी तीन दुकानें खुली हों कि दरवाजे तो खुले हों लेकिन उनमें से एक में चीज भी हो और दुकानदार भी हो लेकिन खरीदार न हो तो दुकानदार चीज किसे बेचेगा? ऐसी अवस्था में दुकानदार कहा

करते हैं **"जी मंदा चल रहा है।"**

दूसरी दुकान में चीज भी है खरीदार भी है, लेकिन दुकानदार नहीं तो बेचेगा कौन?

तीसरी में दुकानदार भी हैं, खरीदार भी है चीज नहीं है तो दुकानदार देगा क्या?

यह दुकानें खुली हुई भी बन्द के समान हैं क्योंकि एक में चीजें बेचने वाला नहीं, दूसरी में चीजें खरीदने वाला नहीं और तीसरी में चीजें ही नहीं हैं।

इसलिये कहते हैं तीन में से किसी एक को निकाल दीजिए बाजार बन्द शुमार किया जायेगा। तो वह तीन बराबर चले आ रहे हैं उसी तरह पर। हमारे ऋषि मुनियों ने हमारे जीवन में इन चीजों को रखकर यह यकीन दिलाया है कि कहीं भूल मत जाना, इस दुनियां की पूर्णता तीन पर आधारित है, अर्थात् परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति पर पूर्णता है।

वहां जहां बाजार में नीलाम हो रहा है, चले जाइये। एक मुसलमान साहब, जो हमारे मजहब के नहीं हैं, चीजें नीलाम कर रहे हैं। क्या नीलाम हो रहा है? पुरानी चीजें रखी हैं।

किसी ने कह दिया दो रुपये, अब आवाज लगा रहा है वह **'दो रुपया एक, दो रूपया दो'** बोल रहे हैं बार-बार। कोई आगे नहीं बढ़ता। फिर किसी ने कह दिया **'तीन रूपये'** तो मियाँजी ने तीन रूपया एक, तीन रूपया दो की आवाज लगानी शुरू कर दी। बहुत देर जब हो गई तो उसने कहा, **"साहिब अब जाती है तीन रूपये में"** और कह दिया कि **"तीन रूपया तीन"** और चीज तीन रूपये में बिकी हुई मान ली गई।

'तीन रूपया तीन' कहते ही खरीदने वाला तीन रूपये देकर और चीज लेकर चला गया। कोई पूछता है उस नीलामकर्ता से कि **'तीन पर क्या बवाल है? यह क्या वजह है कि यह तीन कह कर ही आप अपनी बोली समाप्त कर देते हैं, ये तीन पर ही खत्म क्यों करते हैं? ये चार, पाँच, छः क्यों नहीं बोलते हैं?"** तो मियाँ जी कहने लगे, **"मैं क्या जबाव दूँ साहब इसका! यह तो पुरानें जमाने से चली आ रही है किन्हीं बड़ों से पूछिये।"**

जब रास्ते में आ रहे थे तो क्या देखते हैं कि मास्टर साहब लड़कों को दौड़ा रहे हैं और कह रहे हैं देखो जब वन, टू, और थ्री पर भागना। **'अरे आप मैथमैटिक्स (गणित) के अध्यापक हैं। थ्री, फोर, फाइव, सिक्स, सेवन क्यों नहीं बोलते?'** किसी ने कहा।

उन्होंने कहा 'अरे! **ऐसे ही बोलेंगे तो काम नहीं होगा, लड़के कैसे दौड़ेंगे? देखिये "वन, टू, थ्री" कह कर लड़कों को दौड़ाया जा रहा है।'**

और जो पास होकर आते हैं वे फर्स्ट डिवीजन, सैकेण्ड डिवीजन और थर्ड डिवीजन में आते हैं फोर्थ डिवीजन नहीं है।

रेल में बैठते हैं तो वहां भी फर्स्ट क्लास, सैकेन्ड क्लास और थर्ड क्लास हैं। घर में जाइये तो देखते हैं कि स्त्री है, पति है और बच्चे हैं। तीन चीज वहां भी हैं।

यहाँ देखिये तो मैं (व्याख्याता), व्याख्यान और आप (श्रोता)। इन तीनों में से कोई एक चीज निकाल दीजिये–मैं व्याख्यान देना बन्द कर दूँ, चुपचाप बैठ जाऊँ तो लोग कहेंगे कि **'इसे ऊपर क्यों बैठा रखा है और हम नीचे क्यों बैठे हैं, सब खामोश हैं, आखिर बात क्या है?"**

इसी तरह आप चले जाइये मैं व्याख्यान देने लगूं तो लोग कहेंगे कि यह बेवकूफ है या पागल है? जो बहक रहा है, गर्मी तो इतनी है नहीं, यहां तो हवा चल रही है। शायद इसके दिमाग में कोई खराबी हो गई है जो व्यर्थ बोल रहा है।

जरा विचारिये! कोई एक चीज आप इन तीन में से निकाल दीजिये। व्याख्याता, श्रोता या व्याख्यान। यह तीन चीजों का नमूना किसी न किसी रूप में बराबर चला आ रहा है। कहने का मतलब यह है कि दुनियां ऐसे माकूल अजजा से बनी हुई है जिसका कोई खण्डन आज तक नहीं कर सका। जिस किसी ने भी इस सम्बन्ध में कोई शंका की मैंने यही उत्तर दिया कि तीन के बगैर कोई भी चीज पूरी ही नहीं होती।

मुसलमानों से पूछा कि खुदा दुनियां किसके लिये बनाता है? कोई होना चाहिए जिसके लिए खुदा ने यह दुनिया बनाई? ईसाईयों से भी यही बात पूछी। किन्तु वे भी कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे सके।

मेरे यहाँ तो इस प्रश्न का सीधा सा उत्तर है कि जीवात्मा हमेशा से परमात्मा के साथ है और ईश्वर, अनादिकाल सें जबसे जीवात्मा उसके साथ है जानता है कि जीवात्मा महदूदुल्अक्ल है। छोटे से छोटे जानवर के शरीर में भी जीवात्मा है। जीवात्मा अत्यन्त सूक्ष्म है। जैसे गीता में कहा है–

नैनं छिन्दन्तिशस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः।।

जीवात्मा इतना सूक्ष्म है कि 'बालदग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्य च' बाल के अग्र भाग के दस हजारवें हिस्से के समान।

शास्त्र ने जीवात्मा को इतना सूक्ष्म बताया है। इस कहने का तात्पर्य यह है कि जो जीवात्मा इतना छोटा है वह सर्वज्ञ कैसे हो सकता है? यह All knowledge तो नहीं हो सकता। परमात्मा जानता है कि जीवात्मा असंख्य है और मेरे अधीन हैं तो मेरी जिम्मेदारी है कि मैं उन्हें ज्ञान दूँ। क्योंकि मैं All knowledge हूँ, सर्वज्ञ हूँ, सब कुछ जानता हूँ।

कितना अच्छा हो यदि मेरे ज्ञान का लाभ मैं भी उठाऊँ और ये जीवात्मा भी उठाएं। यदि कोई व्यक्ति अपने ज्ञान से दूसरों को लाभ न पहुँचाये तो लोग उसे स्वार्थी कहते हैं और कोई व्यक्ति अपने ज्ञान से अन्यों को भी लाभान्वित करे तो लोग उसे परोपकारी कहते हैं। तो परमेश्वर भी परोपकारी है। जीवात्मा के भले के लिये, जबसे वह बराबर अपना ज्ञान देता चला आ रहा है। एक लम्हे के लिये भी उसने अपना काम बन्द नहीं किया है।

जीवात्मा का वजूद, उसके अन्दर जो योग्यता उन्नति करने की है उसके विकसित होने से है। यह

उन्नति ईश्वर के सम्पर्क से हो रही है। जैसे बच्चे के अन्दर जो काबलियत व योग्यता इल्म के हासिल करने की है वह उस्ताद की कुरबत से, अध्यापक के सान्निध्य से बढ़ती जा रही है। वह इल्म में रात दिन ऊँचा होता चला जा रहा है।

इसी प्रकार जीवात्मा ईश्वर के सान्निध्य से, जो उसका उस्ताद है , ऊँचा होता जाता है। उसका ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। ईश्वर अपने ज्ञान को इस प्रकार सफल कर रहा है। प्रकृति-प्रकृति यह कहती है-वास्तव में कहती तो नहीं है-किन्तु जबाने हाल से कहती है कौल से नहीं कि मैं भी सफल हो रही हूँ क्योंकि परमात्मा अपनी कारीगरी में मेरी क्षमता को जाहिर करके बता रहा है कि प्रकृति से क्या-क्या लाभ उठाए जा सकते हैं? तो परमात्मा की कारीगरी प्रकृति को जाहिर कर रही है और परमात्मा का इल्म जीवात्मा के गुणों को जाहिर कर रहा है। जीवात्मा उस ज्ञान से अपना विकास कर रहा है।

भगवान् ने जगत् क्यों बनाया? ऊपर के वर्णन से स्पष्ट हो गया कि **'भगवान्, जीवात्मा और प्रकृति का अस्तित्व सफल हो जाए इसलिए परमात्मा ने दुनियाँ बनाई।'**

जीवात्मा अपनी योग्यतानुसार मेरे ज्ञान के बल पर अपना विकास कर, अपनी उन्नति करे। और प्रकृति के अन्दर जितनी भी योग्यता है उनसे विभिन्न प्रकार की वस्तुएं बन सकती हैं वह मैं अपनी कारीगरी से जाहिर कर दूँ। तीनों का वजूद सफल हो जाएगा इसलिए भगवान् ने यह जगत् उत्पन्न किया है। अन्य किसी भी मजहब में उनके पास इस प्रश्न का कि-**''ईश्वर ने दुनियां क्यों पैदा की?''** कोई माकूल जबाब नहीं है।

मुझमें बल है, मैं 53 साल से इस प्रचार कार्य को कर रहा हूँ, शास्त्रार्थ मैंने किये हैं-मैं यह बात अभिमान से या अपनी योग्यता के आधार पर नहीं कहता हूँ, बल्कि मैं यह बात सच्चे सिद्धान्त के आधार पर कहता हूँ, हमारा हथियार अच्छा है और उसी के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि दुनियां के तीन से कम अनादि पदार्थ वालों का सिद्धान्त अधूरा है, पूरा नहीं है।

अकेले खाविन्द हो तो क्या परिवार बढ़ेगा? कदापि नहीं। गृहस्थ को एक छोटा जगत समझ लीजिए। इसमें ब्रह्म की जगह खाविन्द और प्रकृति की जगह स्त्री है और जीवात्मा के स्थान पर बच्चे हैं। परिवार इन तीनों के होने से ही पूरा होता है।

कोई आदमी अपने घर में अकेला रह रहा था। किसी ने पूछा **''क्या बात है भाई शादी नहीं की?''** कहने लगा **''कोशिश तो बहुत की लेकिन शादी होती ही नहीं।''** और कहीं हो भी गई तो होने के बाद सन्तान न हुई। तो जब तक सन्तान न हो जाए, नामुकम्मल परिवार कहलाएगा।

भाइयों! पूरा परिवार कब कहलाएगा? जब बच्चे भी हों, देवी भी हो और स्वयं भी हो। इसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड में परमात्मा है, जीवात्मा है और प्रकृति है। इन तीनों से ही जगत की पूर्णता है। इसलिए Hegal Philosopher की वह उक्ति कि "What so ever is, is according to reason and what is according to reason, that is" संसार की सभी वस्तुओं के लिए उचित बैठती हैं। दुनियां में हर चीज अक्ल के मुताबिक है।

-(शेष अगले अंक में)

पथिक

रचयिताः रामनरेश त्रिपाठी

जग में सचर अचर जितने हैं सारे कर्म–निरत हैं।
धुन है एक न एक सभी को सब के निश्चित व्रत हैं॥
जीवन भर आतप सह बसुधा पर छाया करता है।
तुच्छ पत्र की भी स्वकर्म में कैसी तत्परता है॥
तुम मनुष्य हो, अमित बुद्धि–बल–बिलसित जन्म तुम्हारा।
क्या उद्‌देश्य रहित है जग में तुमने कभी विचारा?
बुरा न मानो, एक बार सोचो तुम अपने मन में।
क्या कर्त्तव्य समाप्त कर लिये तुमने निज जीवन में?
जिस पर गिर कर उदर दरी से तुमने जन्म लिया है।
जिसका खाकर अन्न सुधा सम नीर समीर पिया है॥
जिस पर खड़े हुये, खेले, घर बना बसे, सुख पाये।
जिसका रूप बिलोक तुम्हारे दृग, मन, प्राण जुड़ायें॥
वह सनेह की मूर्ति दयामयि माता तुल्य मही है।
उसके प्रति कर्त्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है?
हाथ पकड़ कर प्रथम जिन्होंने चलना तुम्हें सिखाया।
भाषा सिखा हृदय का अद्‌भुत रूप स्वरूप दिखाया॥
जिनकी कठिन कमाई का फल खाकर बड़े हुए हो।
दीर्घ देह ले बाधाओं में निर्भय खड़े हुये हो॥
जिनके पैदा किये, बुने वस्त्रों से देह ढके हो।
आतप वर्षा शीत काल में पीड़ित हो न सके हो॥
क्या उनका उपकार–भार तुम पर लवलेश नहीं है?
उनके प्रति कर्त्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है?
सतत ज्वलित दुख–दावानल में जग के दारुन रन में।
छोड़ उन्हें कायर बनकर तुम भाग बसे निर्जन में॥

केवल अपने लिये सोचते मौज भरे गाते हो।
जीते खाते सोते जगते हँसते, सुख पाते हो॥
जग से दूर, स्वार्थ-साधन ही सतत तुम्हारा यश है।
सोचो तुम्हीं, कौन जन जग में तुमसा स्वार्थ-विवश है॥

आवश्यकता की पुकार को श्रुति ने श्रवण किया है?
कहा, हाथ ने आगे बढ़ किसको साहाय्य दिया है?
आर्त्तनाद तक कभी पदों ने क्या तुमको पहुँचाया?
क्या नैराश्य-निमग्न जनों को तुमने कंठ लगाया?

मस्तक ऊँचा हुआ तुम्हारा कभी जाति-गौरव से?
अगर नहीं, तो देह तुम्हारी तुच्छ अधम है शव से॥
भीतर भरा अनन्त विभव है, उसकी कर अवहेला।
बाहर सुख के लिये अपरिमित तुमने संकट झेला॥

यह संसार मनुष्य के लिए एक परीक्षा-स्थल है।
दुख है प्रश्न कठोर, दखेकर होती बुद्धि विकल है॥
किन्तु स्वात्म-बल-विज्ञ सत्पुरुष ठीक पहुँच अटकल से।
हल करते हैं प्रश्न सहज में अविरल मेधा-बल से॥

दुख में बंधु, वैद्य पीड़ा में, साथी घोर-विपद में।
दुसह दीनता में आश्रय, उत्साह निराश-नद में॥
भ्रम में ज्योति सुमति सम्पति में, दृढ़ निश्चय संशय में।
छल में क्रांति, न्याय प्रभुता में, अटल धैर्य बन भय में॥

जनता के विश्वास, कर्म, मन, ध्यान, श्रवण, भाषण में।
वास करो, आदर्श बनो, विजयी हो जीवन-रण में॥
अति अशांत, दुखपूर्ण, विश्रृंखल, क्रांति-उपासक जग में।
रखना अपनी आत्म-शक्ति पर दृढ़ निश्चय प्रति पग में॥

बाधा, विघ्न, विपत्ति, कठिनता जहाँ जहाँ सुन पाना।
सबके बीच निडर हो जाना दुख को गले लगाना॥

घृणित अछूत अकिंचन जग में जो जन है जितना ही।
तुम से है वह प्रेम-प्राप्ति का पात्र अधिक उतना ही॥

एक अनन्त शक्ति वसुधा का संचालन करती है।
वह स्वतंत्र इच्छा से लय, उद्भव, पालन करती है॥
उसी शक्ति से ग्रह नियमित कक्षा में चकराते हैं।
किन्तु चीरकर महाशून्य को केतु निगल जाते हैं॥

उसी शक्ति की सुखद प्रेरणा शुद्ध आत्म-सम्मति है।
करो उसी का कर्म उसी की नियत समस्त प्रगति है॥
परम विचित्र यन्त्र यह जग है उसी शक्ति से चलता।
मत करना अभिमान मिले जो तुमको कभी सफलता॥
यद्यपि सब जग का हित-चिन्तन सबको आवश्यक है।
पर प्रत्येक मनुज पर पहला देश जाति का हक है॥
पैदा कर जिस देश जाति ने तुमको पाला पोसा।
किये हुये है वह निज हित का तुमसे बड़ा भरोसा॥
उससे होना उऋण प्रथम है सत्कर्त्तव्य तुम्हारा।
फिर दे सकते हो वसुधा को शेष स्वजीवन सारा॥
जो कुछ कहना था सब मैंने तुम से कहा खुलासा।
जाता हूँ उत्तर लेने की है न मुझे अभिलाषा॥
मैंने भी घर से बाहर हो बड़ा भाग जीवन का।
खोया है निश्चिन्त मूढ़ सा आश्रय ले गिरि वन का॥
उसी शक्ति से बोल लोक-हित जो कुछ हो सकता है।
करता हूँ फिर कर जब तक मस्तिष्क नहीं थकता है।
मैं कर चुका समर्पण सब कुछ इच्छा पर ईश्वर की।
ईर्ष्या नहीं निरादर की है प्रीति नहीं आदर की॥

मैंने निज कर्तव्य समझ समझाया तुम्हें तुम्हारा।
तुम स्वतंत्र हो करो तुम्हें जो लगे हृदय से प्यारा॥
कुंजी है इस अखिल विश्व की यह मस्तिष्क तुम्हारा।
कर सकते हो प्राप्त सकल ऐश्वर्य इसी के द्वारा॥

फिर कहता हूँ, डरो न दुख से कर्म-मार्ग सम्मुख है।
प्रेम-पथ कठिन, यहाँ दुख ही प्रेमी का सुख है॥
कर्म तुम्हारा धर्म अटल हो कर्म तुम्हारी भाषा।
हो सकर्म मृत्यु ही तुम्हारे जीवन की अभिलाषा॥

❀❀❀

पूजा-धर्म

लेखकः– महात्मा हंसराज

(1) हे मनुष्यो! इस शरीर में दो चेतन नित्य हुए जीवात्मा और परमात्मा वर्त्तमान हैं उन दोनों में एक अल्प, अल्पज्ञ और अल्प देशस्थ जीव है वह शरीर को धारण करके प्रकट होता, वृद्धि को प्राप्त होता है और परिणाम को प्राप्त होता तथा हीन दशा को प्राप्त होता, पाप और पुण्य के फल का भोग करता है, द्वितीय परमेश्वर ध्रुव निश्चल, सर्वज्ञ, कर्म फल के सम्बन्ध से रहित है ऐसा तुम लोग निश्चय करो।

(2) हे मनुष्यो! इस शरीर में सच्चिदानन्द स्वरूप अपने से प्रकाशित ब्रह्म, द्वितीय जीव, तृतीय मन, चौथी इन्द्रियां, पाँचवें प्राण, छठा शरीर वर्त्तमान है ऐसा होने पर सम्पूर्ण व्यवहार सिद्ध होते हैं जिनके मध्य से सबका आधार ईश्वर, देह अन्तःकरण प्राण और इन्द्रियों का धारण करनेवाला और जीवादिकों का अधिष्ठान शरीर है यह जानो।

(3) हे मनुष्यो! जैसे प्राण और बिजुली को प्राप्त होकर सम्पूर्ण पृथिवी आदिकों की स्थिति है और जैसे अग्नि से सम्पूर्ण प्राणी डरते हैं वैसे ही सर्वव्यापी और सबके अन्तर्यामी परमात्मा को मान के पाप के आचरण से विद्वान् जन डरते हैं इस निमित्त से सब जन इससे डरें।

(4) हे मनुष्यो! जैसे यज्ञ करनेवाले यज्ञ में अग्नि को प्रथम उत्तम प्रकार स्थापित करके उस अग्नि में आहुति देकर संसार का उपकार करते हैं वैसे ही आत्मा के आगे परमात्मा को संस्थापित करके वहाँ मन आदि का हवन करके और प्रत्यक्ष करके उसके उपदेश से जगत् का उपकार करो।

(5) हे मनुष्यो! सब आप लोगों का परमेश्वर ही स्तुति करने, मानने, हृदय में धारण करने और उपासना करने योग्य है ऐसा सब लोग निश्चय करो।

(6) हे मनुष्यो! आप लोग प्रतिदिन सर्वव्यापी, न्यायेश, दयालु, सब धन्यवादों के योग्य, परमात्मा ही की उपासना करो।

(7) जो मनुष्य जगत् के रचनेवाले ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्ताव करते हैं तथा उसके गुण कर्म और स्वभावों के सदृश अपने गुण कर्म और स्वभावों को करते हैं उनको वह जैसे दूत वैसे सब विद्या के समाचार को जनाता हुआ सहज से मुक्ति के पद को प्राप्त कराता है इससे सब काल में ही इसकी उपासना करनी चाहिये।

(8) जो परमात्मा को नहीं जानते और उसकी आज्ञा के अनुकूल आचरण नहीं करते हैं उनको धिक् है धिक् है और जो उसकी उपासना करते हैं वे धन्य हैं। और जो हम लोगों के लिये वेद द्वार सम्पूर्ण विज्ञानों का उपदेश देता है वही सब लोगों को उपास्य है।

(9) जो सत्यभाव से जगदीश्वर की उपासना करते हैं उनकी ईश्वर सब प्रकार से रक्षा कर धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वभावों में प्रेरणा कर तथा शरीर और आत्मा का बल अच्छे प्रकार देकर मोक्ष को प्राप्त कराता है।

(10) हे मनुष्यो! जो धर्म से याचना किया गया जगदीश्वर अधर्म के आचरण से अलग करके धर्म को प्राप्त कराता है और जो अनित्य सुख को भी देता है उसी को रक्षक, सब ऐश्वर्य देनेवाला तथा इष्ट देव जानो।

(11) हे मनुष्यो! जो सम्पूर्ण जगत् और जीवों के कर्मों को जानकर फलों को देता है वही सत्य राजा है ऐसा जानना चाहिये।

(12) हे मनुष्यो! जो सम्पूर्ण सृष्टि को एकत्रित करता है और जो व्यापक अहिंसा आदि धर्म के अनुष्ठान के लिये आज्ञा देता है वही सबसे उपासना करने योग्य है।

(13) हे मनुष्यो! जो अन्न और पानादिक जीवन के हितकारक पदार्थों को धारण करता, अन्तर्यामी होने से सत्य का उपदेश करता उसके आश्रय से ही सम्पूर्ण दु:खों के पार प्राप्त होओ।

(14) हे विद्वानो! जैसे ईश्वर सबका हितकारी और सम्पूर्ण सुखों का देनेवाला तथा विद्वानों के संग से जानने योग्य है वैसे आप लोग भी अनुष्ठान करो।

(15) हे विद्वान् जनों! जैसे ईश्वर ने प्रकाश स्वरूप सम्पूर्ण जगत् का उपकारक सूर्य रचा है वैसे विद्या से प्रकाशित जनों को विद्वान् करो।

(16) हे मनुष्यो! जहाँ जगदीश्वर वा योगाभ्यास में आप लोगों का अन्त:करण पवित्र होकर कार्य की सिद्धि को करता है वहाँ ही आप लोग भी प्रवृत्ति करिये।

(17) हे मनुष्यो! जो उत्पन्न करनेवालों का उत्पादक, प्रकाशकों का प्रकाशक है उसकी सब लोग उपासना करें।

(18) हे मनुष्यो! जिस जगदीश्वर की योगी जन उपासना करते हैं उसकी आप लोग भी उपासना करो।

(19) जो सत्य भाव से और अन्त:करण से जगदीश्वर की आज्ञा का सेवन करते हैं वे सब प्रकार से उत्कृष्ट होते हैं।

(20) जैसे यज्ञ करनेवाले जन यज्ञ में वेदी पर अग्नि को प्रज्वलित करके हवन की सामग्री छोड़ के संसार का उपकार करते हैं वैसे ही योग से युक्त संन्यासी जन परमात्मा को सबके हृदय में अच्छे प्रकार प्रकाशित करके दोषों का नाश करते हैं।

(21) जो श्रद्धा से परमेश्वर की उपासना करके विद्यार्थियों की परीक्षा करते हैं वे जगत् के प्रिय होते हैं।

(22) जो मनुष्य परमात्मा ही की उपासना करते हैं वे अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं और जो विद्या से हीन होकर विद्वानों के साथ कुतर्क करता है वह कुछ भी यहाँ नहीं पाता है।

–शेष पृष्ठ संख्या 32 पर

साधारण कार्य और कर्तव्य

अनुवादकर्ता–ठा० कल्याणसिंह शेखावत

हमारे कर्तव्य के पास वह कुंजी है जो हमारे लिये स्वर्ग के द्वार का ताला खोलेगी। न शीघ्रता से और न विलम्ब से, बल्कि यथोचित समय पर जो मनुष्य पहुँचेगा वही स्वर्गीय दृश्य को देख सकेगा।

उस तारे की नाईं जो दूर पर चमकता है प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह अपने दैनिक कर्त्तव्य की दृढ़ता के साथ परिक्रमा करे। –गेटे

जैसे उचित आरम्भ से सुख और अनुचित आरम्भ से दुख मिलता है उसी प्रकार साधारण कार्यों और कर्त्तव्यों से क्लेश और आनन्द प्राप्त होते हैं। यह बात नहीं है कि स्वयं कर्त्तव्य–पालन में ऐसी कोई शक्ति है कि जो मनुष्य को सुख या दु:ख का उपहार देती है; किन्तु सुख और दु:ख देनेवाला तो मन का वह भाव है जिससे कर्त्तव्य–पालन किया जाता है। जिस भाव से हम कर्तव्य–परायणता को पहुँचते और कर्तव्यपालन बनते हैं उसी पर प्रत्येक कार्य अवलम्बित है। क्षुद्र कार्यों को नि:स्वार्थ विवेक और पूर्णता से करने से बहुत बड़ा सुख ही नहीं मिलता है किन्तु बड़ी भारी शक्ति भी प्राप्त होती है। क्योंकि जैसे बूँद–बूँद से घट भरता है वैसे ही जीवन भी छोटे–छोटे कार्यों से सम्पूर्ण होता है। जीवन के साधारण दैनिक कार्यों में विवेक अर्न्तव्याप्त है और जब किसी वस्तु के भिन्न–भिन्न भाग सम्पूर्ण होते हैं तो वह समस्त वस्तु भी अवश्य सम्पूर्ण होती है।

संसार की वस्तु छोटे–छोटे परमाणुओं से बनी हुई है और अल्प वस्तुओं की सम्पूर्णता पर बड़ी–बड़ी वस्तुओं की सम्पूर्णता अवलम्बित है। यदि सृष्टि के किसी विशेष अंग की बनावट में कच्चापन है तो सम्पूर्ण सृष्टि में न्यूनता रहेगी। यदि किसी वस्तु का कोई परमाणु निकाल दिया जाय तो उस वस्तु का स्थिर रहना कठिन हो जायगा। बालू (मिट्टी) के कणों के बिना पृथ्वी नहीं बनती और मिट्टी नन्हा सा कण सम्पूर्ण है तो पृथ्वी भी नहीं बनती और मिट्टी का नन्हा सा कण सम्पूर्ण है तो पृथ्वी भी सम्पूर्ण है। क्षुद्र कार्य को भूल जाने से महत् कार्य में भी गड़बड़ रहती है। हिम का फेन उतना ही सम्पूर्ण हैं जितना एक नभोमंडल का तारा। ओस का एक बिन्दु उतना ही सुडौल और सुरचित है जितना भूगोल।

एक सूक्ष्म कृमि उतने ही हिसाब–किताब से बनाया गया है जितने से एक मनुष्य। पत्थर पर पत्थर रखने से और उनको सहावल के द्वारा ठीक जमाने से अन्त में सुन्दर मन्दिर खड़ा कर दिया जाता है। छोटे ही से बड़ा होता है। छोटा बड़े का अनुचर नहीं है बल्कि उसको ज्ञान करानेवाला विवेक और स्वामी है।

घमंडी और लालची मनुष्य महत्व को प्राप्त होने की तीव्र इच्छा से बड़े कार्यों को करने की खोज करते हैं और उन छोटे –छोटे कार्यों को जिनको शीघ्रता से करना आवश्यक है परन्तु जिनके करने में

मिथ्या प्रशंसा नहीं मिलती और जिनको तुच्छ समझकर करना वह अपना मन्तव्य और पुरुषार्थ नहीं समझते-टालते हैं और उनको घृणा की दृष्टि से देखते हैं।-मूर्ख में नम्रता नहीं होती इसलिये उसमें ज्ञान भी नहीं होता और अहंकार से फूला हुआ वह असम्भव कार्यों को करने का प्रयत्न करता है।

महत्पुरुष छोटे-छोटे कार्यों को सन्देहरहित और स्वार्थशून्य भाव से करता हुआ, जिनमें उसको कोई प्रशंसा, उपहार या पुरस्कार नहीं मिलता, घमंड और लालच को मारकर, ज्ञानवान् और शक्तिमान् बनता है। महत्पुरुष महत्त्व को नहीं खोजता बल्कि भक्ति, निःस्वार्थता, और सत्य को खोजता है। वह लोकव्यवहार के इन ही साधारण और अल्प कार्यों और कर्त्तव्यों को करते हुए उपर्युक्त गुणों को प्राप्त करके महत्ता के शिखर पर स्वतः ही चढ़ जाता है। बड़ाई के लिये बड़े काम करने की आवश्यकता नहीं है बल्कि इन ही सांसारिक सर्वसाधारण कर्त्तव्यों को दिन प्रतिदिन ईमानदारी, स्वार्थशून्यता और सत्य के साथ करने से बड़ाई अपने आप आ जाती है।

प्रत्येक क्षण, प्रत्येक शब्द, स्वागत, भोजन, वस्त्र, पत्रव्यवहार, विश्राम, कार्य, प्रयत्न, कृतज्ञता इत्यादि छोटी-छोटी सहस्रों बातों को महत्पुरुष बड़ी समझता है। वह प्रत्येक कार्य को दैव का नियमित किया हुआ समझता है और अपना केवल यह कर्त्तव्य समझता है कि उस कार्य को शान्त विचार से करूँ कि जिससे जीवन सुखी और सम्पूर्ण बने। महत्पुरुष न भूल करता और न शीघ्रता करता है। वह अशुद्धियों और मूर्खताओं से बचने की चेष्टा करता है। अपने सन्मुख उपस्थित हुए कार्य को, चाहे वह लघु हो या महान्, वह ध्यान से करता है। न उसको आगे के लिये टालता है और न उसके सम्पादन के हेतु पर खेद करता है। वह हर्ष और खेद को भूलकर अपने को कर्त्तव्य में रत कर देता है और उस बालसरलता और नैसर्गिक शक्ति को प्राप्त कर लेता है जिसको महत्त्व कहते हैं।

कन्फ्यूशियस का यह उपदेश है कि ''अपने घर में उसी प्रकार और वैसे ही हर्ष से भोजन करो जैसे किसी राजा के घर पर करते हो।'' यह उपदेश छोटी बातों के महत्त्व को बताता है। बुद्ध भगवान् भी कहते हैं कि ''यदि किसी काम को करना है तो चाहे वह कितना ही छोटा हो उस पर प्रबलता से आक्रमण करना चाहिये।'' छोटे-छोटे कार्यों को भूलना या उनको आलस्य के साथ और बिना मन के करना दुर्बलता और मूर्खता का लक्षण है।

प्रत्येक कार्य को निस्वार्थता और ध्यान से करने से प्रकृति के नियमानुसार मनुष्य के कर्त्तव्य बहुत बढ़ जाते हैं और उसकी कर्त्तव्यपालन की शक्ति भी उच्चकोटि की हो जाती है; क्योंकि कर्त्तव्यपालन से बल की वृद्धि होती है और बुद्धि, सुमनसता और चरित परिपक्वता को पहुँचते हैं। जैसे वृक्ष में स्वतः ही प्रकृति के धर्मानुसार पुष्प निकल आते हैं, उसी प्रकार मनुष्य कर्त्तव्यपरायणता से स्वतः ही महत्ता को प्राप्त होता है और लगातार शक्ति और परिश्रम के साथ प्रत्येक प्रयत्न को उचित स्थान और समय पर करता हुआ अपने जीवन और चरित को सुन्दर बना लेता है।

'इच्छशक्ति' (मनोबल) और 'मानसिक ध्यान' की वृद्धि के लिये संसार में जितने प्रचलित उपाय

हैं वे अनुभव की दृष्टि से देखने पर निरर्थक प्रतीत होते हैं। प्राणायाम, आसन, नेत्र-प्रहार, तन्त्र-मन्त्र ये सब जितने बनावटी और असत्य प्रयोग हैं उतने ही भ्रममूलक भी हैं। परन्तु उस सत्यमार्ग को-उस दैनिक कर्त्तव्यपालन के मार्ग को-जिस पर चलने से 'इच्छाशक्ति' और मानसिक बल सुप्रकार बढ़ सकते हैं अच्छे-अच्छे मनुष्य भी भूले हुए हैं और उस पर नहीं चलते हैं।

शक्ति या प्रभुत्व प्राप्त करने के हेतु अस्वाभाविक कष्ट और काम करना परित्याग कर देना चाहिये। बचपन से, युवावस्था, मूर्खता से विवेक, अज्ञानता से ज्ञान, और दुर्बलता से बल, ये सब धीरे-धीरे प्राप्त होते हैं। मनुष्य को चाहिये कि विचार पर विचार, प्रयत्न पर प्रयत्न और कार्य पर कार्य करके दिन प्रतिदिन धीरे-धीरे वृद्धिगत होना सीखे।

यह सत्य है कि साधु **'समाधि' 'आसन'** इत्यादि से अपने शरीर को पीड़ित करके किसी श्रेणी तक शक्ति प्राप्त कर लेता है, परन्तु इस शक्ति को बहुत भारी मूल्य देकर (अर्थात् शारीरिक बल की आहुति देकर) प्राप्त करता है और ऐसा करने से जैसे उसको मानसिक शक्ति का लाभ होता है वैसे शारीरिक शक्ति की हानि होती है। वह साधु किसी आध्यात्मिक ज्ञान का विशेष ज्ञाता भले ही हो जावे परन्तु अपने देहबल और उपयोगी स्वभाव को खो देता है। वह सम्पूर्ण मनुष्य नहीं बनता किन्तु सदैव अपूर्ण रहता है। चिड़चिड़ापन, मूर्खता, उतावलापन, व्यभिचारादि को-जो मनुष्य दैनिक जीवन के साथी हैं और जो थोड़ासा अवसर पाते ही शरीर में उत्पन्न होते हैं-जीतना और सांसारिक कर्त्तव्यों की धूप और भार में, विह्वल और अस्वस्थ मनुष्यों की भीड़ में, शान्ति, आत्मदान और धृति को परिपक्व करना ही सच्ची आत्मशक्ति है। इससे न्यून हम किसी भी वस्तु को सच्ची शक्ति नहीं कह सकते। दैनिक कार्य, कर्त्तव्य और उपकारों को अधिक से अधिकतर सुन्दर उपाय, निस्वार्थता और सम्पूर्णता के साथ करने से आत्मशक्ति शनैः-शनैः स्वतः ही बढ़ती चली जाती है।

सच्चा गुरु वह नहीं है जो गुप्त और आश्चर्ययुक्त आध्यात्मिक ज्ञान रखते हुए भी कई बार असावधानी चिड़चिड़ापन, खेद, मूर्खता या किसी प्रकार के दुर्व्यसन का आखेट बन जाता है, किन्तु सत्य गुरु वही है जो अपने महत्त्व को साहस, रोषशून्यता, दृढ़ता, शान्ति और असीम धैर्य द्वारा दिखाता है। जो अपनी आत्मा पर प्रभुत्व रखता है वही सच्चा प्रभुत्वशाली है। इसके अतिरिक्त जो कुछ है वह प्रभुत्व नहीं किन्तु धोखा है।

मनुष्य को चाहिये कि जब उसके सन्मुख कोई कार्य उपस्थित हो, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, उसको पूरे मन बुद्धि और ध्यान से करे। उस काम के अतिरिक्त अपने मस्तिष्क में और किसी भी विचार को न घुसने दे और अपने काम के बदले में किसी उपहार की प्रतीक्षा न करे। ऐसा करने से वह अपने मन पर अधिक से अधिकतर अधिकार जमाता जायगा और इस प्रकार उन्नत होता हुआ वह अन्त में अत्यन्त शक्तिमान् बन जायगा।

सन्मुखोपस्थित कार्य में अपने को इस प्रकार दृढ़ता से लगाओ और उसे ऐसे दत्तचित्त होकर करो

कि वह सम्पूर्ण और सिद्ध हो जाय। आत्मशक्ति, ध्यान और पौरुष की वृद्धि का सत्यमार्ग यही है। तन्त्र, मन्त्र इत्यादि कृत्रिम उपायों को मत खोजो। उन्नति प्राप्त करने का प्रत्येक उपाय तुम्हारे ही साथ और तुम्हारे ही हृदय में है। तुम्हें तो केवल इस बात को सीखना है कि जिस स्थिति में तुम हो उसी में अपने आपको खूब लगा दो। जब तक तुम ऐसा नहीं करोगे तब तक सुष्टुतरा स्थितियाँ जो तुम्हारे लिये बाट जोह रही है तुम्हें नहीं मिल सकतीं।

प्रत्येक क्षण में बल और बुद्धि से काम करने से ही बल और बुद्धि की प्राप्ति होती है और क्षण-क्षण में पृथक्-पृथक् कार्य करने को मिलते हैं। शक्तिमान् और धीमान् जन वही है जो क्षुद्र कार्यों को महत्वकार्यों की नाईं करता है और किसी भी बात को तुच्छ नहीं समझता। परन्तु दुर्बल मूर्खजन छोटे कार्यों को असावधानी और ओछेपन से करता है और बड़े काम करने के लिये लालायित रहता है। वह यह नहीं जानता कि मैं क्षुद्र कार्यों को असावधानी और अयोग्यता के साथ करके संसार के समक्ष अपनी अयोग्यता प्रकट कर रहा हूँ। जो मनुष्य अपने ऊपर अधिकार नहीं रखता वह दूसरों पर अधिकार करने और बड़ी जिम्मेवारियों को अंगीकृत करने को बहुत ललचाया रहता है। किसी का कथन है कि "जो मनुष्य अपने कर्त्तव्य को तुच्छ समझकर उसका पालन नहीं करता है वह अपने आपको धोखा देता है। तुच्छ समझकर क्षुद्र कर्त्तव्य का उसका न करना छोटी बात नहीं है किन्तु बड़ी बात है।"

जैसे कार्य को शक्ति करने से और भी अधिक शक्ति प्राप्त होती है वैसे ही कार्य को दुर्बलता के साथ करने से दुर्बलता बढ़ती है। मनुष्य जैसे छोटे कार्यों को करता है वैसे ही बड़े कार्यों को भी करता है। दुर्बलता से उतना ही कष्ट उत्पन्न होता है जितना पाप से। मनुष्य में जब तक थोड़ी बहुत चरित्रशक्ति न हो, तब तक उसको यथार्थ आनन्द नहीं मिल सकता। दुर्बल जन छोटी-छोटी बातों को महत्त्व की समझकर करे तो बलवान् हो सकता है और सुशक्त मनुष्य अपने छोटे-छोटे कार्यों को असावधानी और ढीलेपन से करे तो अपने साधारण विवेक और पौरुष को भ्रष्ट करके अशक्त हो जाता है। निम्नलिखित शब्दों में उन्नति का जो नियम वर्णित किया गया है वह उपर्युक्त बातों को प्रमाणित और सिद्ध करता है-"बल जिसमें पहले से है उसी को मिलेगा और जिसमें पहले ही से नहीं है उसका जो थोड़ा बहुत है सो भी छिन जायगा।"

मनुष्य जैसा-जैसा विचार करता, जैसा-जैसा करता और कहता है, वैसा ही उसको हानि लाभ मिलता है। मनुष्य का चरित क्षण-क्षण में घटता-बढ़ता रहता है। किसी क्षण में कुछ भलाई का अंश बढ़ जाता है, किसी क्षण में न्यून हो जाता है। अर्थात् जिस क्षण में जैसा उसका मन वचन और कर्म होता है वैसा ही उसका चरित बढ़िया या घटिया होता है और वैसा ही उसको हानि या लाभ प्राप्त होता है।

जो लघुपर अधिकार जमा लेता है वह गुरु पर भी न्यायसंगत अधिकार कर लेता है। परन्तु जो लघु के स्वयं वशीभूत हो जाता है वह विजय प्राप्त नहीं कर सकता। ❁❁❁

आर्य जीवन

लेखकः पं० राजाराम प्रोफेसर

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धयाशासदव्रतान्। शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते समधादेषु चाकन। (ऋग् 1। 51। 8)

हे इन्द्र ! आर्यों को पहचान, और जो दस्यु हैं, उनको पहचान, और इन व्रत हीनों को सीधा कर यज्ञकर्ता के वशवर्ती बना। तू शक्तिमान् है, यज्ञकर्ता को आगे ही आगे ले जाने वाला बन। और मैं तेरी इन सारी महिमाओं को संग्रामों में यज्ञों में और उत्सवों में सदा चाहता रहूँ।

वेद में अर्य और आर्य दो भिन्न शब्द पाये जाते हैं। आर्य शब्द की व्युत्पत्ति और प्रवृत्ति। अर्य शब्द बहुधा ईश्वर अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जैसाकि–

यो अर्यो मर्तभोजनं पराददाति दाशुषे। इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु विभजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः (ऋग 1। 81। 6)

जो ईश्वर दानी पुरुषों को मनुष्यों के भोग प्रदान करता है, वह इन्द्र हमें दे, हे इन्द्र सबको बांटकर दे, तेरे पास अनखूट्ट भंडार है, अपने धन का हमें भागी बना।

यहाँ अर्य शब्द ईश्वर अर्थ में है, ऐसे ही अन्यत्र भी है अत एत निघण्टु 2 । 22॥ में 'अर्य' ईश्वर के नामों में पढ़ा है अर्य का दूसरा अर्थ वैश्य भी माना गया है। जैसाकि पाणिनिमुनि लिखते हैं।

अर्यः स्वामि वैश्ययोः (अष्टा० 3 । 1। 103॥)

स्वामी और वैश्य का अर्थ में अर्य बनता है।

इस दूसरे अर्थ में अर्य शब्द की प्रवृत्ति का मूल भी वही पहला अर्थ है। वैश्य भूमि का स्वामी होने से अर्य कहलाया है। ईश्वर स्वामी (मालिक) ये पर्याय शब्द हैं। सो मुख्यवृत्ति से अर्य शब्द का अर्थ ईश्वर ही है।

अर्य से अपत्य अर्थ में ''तस्यापत्यम्'' (अष्टाध्यायी 4 । 1। 92) सूत्र से अण् आकर आर्य बना है। तब आर्य शब्द की यह व्युत्पत्ति हुई ''आर्यस्यापत्यम् आर्यः'' वह जो ईश्वर का पुत्र है, वह ''आर्य'' है।

यही निर्वचन यास्काचार्य को अभिमत है, जैसाकि वे लिखते हैं–आर्यः = ईश्वर पुत्रः (निरु० 6। 5। 3)

अब जिस दृष्टि से लोक में एक को दूसरे का पुत्र कहते हैं, उस दृष्टि से तो ईश्वर न किसी का पिता है, न कोई उसका पुत्र है, किन्तु पिता के धर्मों का पालन करने से ईश्वर को पिता कहा गया है। इसी प्रकार पुत्र के धर्म पालन करने से मनुष्य पुत्र कहलाता है। अब ईश्वर तो सबकी ओर पिता का धर्म पालन करता है इसलिए वह सबका पिता कहलाता है, जैसाकि स्वयं परमात्मा का वचन है–

मां हवन्ते पितरं न जन्तवः (ऋग्० 10। 48। 1)

मुझे सब लोग पिता की तरह बुलाते हैं।

पर मनुष्य सब ईश्वर की ओर पुत्र का धर्म पालन नहीं करते, अतएव सभी आर्य नहीं कहलाते, जो पुत्र के धर्म का पालन करते हैं, वे ही आर्य नाम के योग्य हैं, जो नहीं करते, वे आर्य = ईश्वरपुत्र नाम के योग्य नहीं हैं। जैसाकि स्वयं परमात्मा का वचन है–

न यो रर आर्य नाम दस्यवे (ऋग्0 10 । 49। 3)

मैं वह ईश्वर हूँ, जिसने आर्य नाम दस्यु को नहीं दिया है।

इस प्रकार आर्य इस दो अक्षरों के नाम में वे सारी बातें आ जाती हैं, जो एक आर्य का कर्तव्य है। पुत्र को पिता पर भरोसा होता है। आर्य वह है, जिसको ईश्वर पिता पर पूरा भरोसा है। पुत्र वही है, जो पिता का आज्ञाकारी हो, आर्य वही है, जो ईश्वर पिता का आज्ञाकारी है। अर्थात् ईश्वर के वे नियम जो इस सृष्टि में पाए जाते हैं, और वे संदेश जो उसने ऋषियों के द्वारा भेजे जाते हैं, सदा उनका पालन करता है, और कभी नहीं उलांघता। सच्चा पुत्र वही है, जो पिता के गुण अपने जीवन में दिखलाए, सच्चा आर्य वही है, जो ईश्वरीय गुण अपने जीवन में दिखलाए। और अनीश्वर गुणों को अपने जीवन से मिटा डाले। सारांश यह, कि जो शक्तिमत्ता, विद्वता, न्याय परायणता, सत्यवादिता, शुद्धाचार, सद्व्यवहार, धीरता, गम्भीरता, शूरवीरता, स्वतन्त्रता आदि सद्गुणों से युक्त है वही आर्य है। सो आर्य शब्द का व्युत्पत्तिनिमित्त है ईश्वरपुत्र होना, और प्रवृत्ति निमित्त है, सद्गुणी होना। जो सद्गुणों से युक्त है, वही आर्य है। जो हीन है, वह दस्यु और दास है। सद्गुणी ही पूजा के योग्य है और श्रद्धा के योग्य होता है, इसलिए पूज्य और श्रद्धेय अर्थ में भी आर्य शब्द का प्रयोग होता है। सो आर्य इस एक ही शब्द में आर्य जीवन का सारा सार भरा है।

प्रमाण– कर्तव्यमाचरन् कार्यमकर्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठते प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः।।

जो करने योग्य कार्य को करता है, और न करने योग्य को नहीं करता, और जाति कुल देश की मर्यादा में स्थिर रहता है, वह आर्य कहलाता है।

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः।। 112
न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः।
दत्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः।। 113

(महाभारत, उद्योग पर्व अध्याय 34)

जो शान्त हुए वैर को नहीं चमकाता, घमंड में कभी नहीं आता, तेज से हीन नहीं होता, और विपदाएं झेलता हुआ भी अकार्य नहीं करता है, उसको, हां केवल उसी को आर्य पुरुष आर्यशील कहते हैं। 112। जो अपने सुख (ऐश्वर्य) में फूल नहीं जाता, दूसरे के दुःख में प्रसन्न नहीं होता, देकर के पीछे

पछताता नहीं, वही सत्पुरुष आर्यशील कहलाता है। 113

वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया। (महाभारत उद्योग पर्व 89)

आचरण से ही आर्य होता है, न धन से न विद्या से।

पूर्व आर्य– हमारे पूर्वज सद्गुणों के कारण ही आर्य कहलाते थे, और उन्होंने अपने वंश को सद्गुणी बनाने के लिऐ ऐसे प्रबन्ध रच रखे थे, कि उनमें कोई अनार्य उत्पन्न ही न हो, इसलिए उनके वंश आर्यवंश कहलाए, उन सबकी एक जाति आर्य जाति के नाम से और देश आर्यावर्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ, और आर्य जाति के प्रतियोग में अनार्य जातियां दस्यु जातियां कहलाईं। जाति नाम हो जाने पर भी यह जाति अपने नाम के वास्तव महत्त्व को अनुभव करती रही है, और अपने जीवन में वास्तविक आर्यत्व दिखलाती रही है। जैसाकि यह वचन बतलाता है–

जातो नार्या मनार्याया मार्यादार्यो भवेद् गुणैः।
जातोप्य नार्या दार्याया मनार्य इति निश्चयः।। –(मनु0 10। 67)

अनार्या नारी में से जो एक आर्य से उत्पन्न हुआ है, वह गुणों से आर्य होगा। पर अनार्य से आर्यों में से भी उत्पन्न हुआ पुरुष (गुणों से) अनार्य होता है, यह पक्का निश्चय है।

कवि कालिदास भी आर्यत्व के इस महत्त्व को कैसे सुन्दर रूप में वर्णन करते हैं। जबकि शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त का मन उसमें अनुरुक्त हो गया है, तो दुष्यन्त के मन में शंका उठती है, कि क्या यह क्षत्रिय की पत्नी होने योग्य तो है, कहीं मेरे मन ने असन्मार्ग में तो पाओं नहीं रख दिया है। तब इस आशंका को मिटाता हुआ दुष्यन्त कहता है–

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्य मस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करण प्रवृत्तयः।।

निःसन्देह यह एक क्षत्रिय की पत्नी होने योग्य है, जबकि मेरा आर्य मन इसमें अनुरक्त हुआ है। क्योंकि सन्देह वाली बातों के विषय में भले पुरुषों (आर्यों) के मन की प्रवृत्तियें प्रमाण होती हैं (आर्य मन स्वभावतः उसी में प्रवृत्त होगा, जो उसके लिए धर्म है, यह हो नहीं सकता, कि आर्य मनस्वभावतः कभी पाप में प्रवृत्त हो)।

वर्तमान आर्य– सो आर्य वंशों में उत्पन्न हुए वर्तमान आर्यों को अब अपने इस सच्चे आर्यत्व को पहचानना चाहिये।

उदाहरण– नारद ने वाल्मीकि के लिए आर्य राम का वर्णन इस प्रकार किया है–

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी।। 8।।
बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रु निवर्हणः।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः।। 9।।
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः।। 10।।

समः समविभक्तांगः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षाः विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥ 11॥
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥ 12॥
प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता॥ 13॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
वेदवेदांगतवज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥ 14॥
सर्वशास्त्रर्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥ 15॥
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इ सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥ 16॥

–(वाल्मीकि रामायण बाल काण्ड सर्ग 1)

इक्ष्वाकु वंश से प्रकट हुआ जगद् विख्यात राम है, जिसका मन स्थिर है, शक्ति महती है, चेहरे पर कान्ति बरसती है, मन में धैर्य है, अपने आप को अपने वश में रखे हुए है॥ 8॥ बुद्धिमान्, नीतिमान्, मधुरभाषी, शोभावाला, शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला है, जिसके कन्धे मोटे, भुजाएं लम्बी, ग्रीवा शंख की तरह (तीन रेखा वाली) और ठोड़ी बड़ी है॥ 9॥ जिसकी छाती विशाल है, दोनों हसलियें (मांस से) ढकी हैं, जिसका धनुष बहुत बड़ा है, और जो शत्रुओं को सिधाने वाला है। जिसकी भुजाएं गोड़ों तक लम्बी हैं, सिर समगोल है, सुप्रशस्त ललाट, और सुन्दर चाल वाला है॥ 10॥ जिसके शरीर बनावट सारी एक समान है और अंग सब खुले और एक दूसरे के अनुरूप हैं, जिसका रंग गूढा, प्रताप सब पर छा जाने वाला, छाती पीन (पीड़ी) और नेत्र विशाल हैं। जो शोभा से पूर्ण और शुभ लक्षणों वाला है॥ 11॥ जो धर्मज्ञ, सच्ची प्रतिज्ञा वाला, प्रजाओं के हित में रता हुआ, यशस्वी, ज्ञान में परिपूर्ण, (बाहर अन्दर से) शुद्ध सरल (बड़ों का) वशवर्ती, और चित्त को कभी न डुलाने वाला है॥ 12॥ (दक्ष आदि) प्रजापतियों के समान वह श्रीमान् प्रजाओं का धारण पोषण करने वाला और उनके शत्रुओं का नाश करने वाला है, जीवलोक का रक्षक, और धर्म की मर्यादा का रक्षक है॥ 13॥ अपने धर्म का रक्षक, अपने जन का रक्षक, वेद वेदाग का तत्त्व जानने वाला, धनुर्वेद में पूरा गुणी॥ 14॥ सारे शास्त्रों का तत्त्वदर्शी, स्मृतिमान् और प्रतिभाशाली, सब का प्यारा, सबके काम संवारने वाला है, जिसके आत्मा में दीनता कभी (बड़ी–2 विपत्तियों में भी) नहीं आई और जो बड़ा निपुण है॥ 15॥ नदियों से समुद्र की तरह सर्वदा भले मनुष्यों से चारों ओर से घिरा हुआ, सच्चा आर्य सबमें सम (पक्षपात रहित, एक जैसा बर्तने वाला) और सदा ही प्यारे दर्शन वाला है॥ 16॥

यह है आर्य जीवन की महिमा, जो पुरुष मनुष्य जीवन को ऐसा महान् बनाने की चेष्टा करेगा, वही आर्य नाम को सार्थक करेगा। ❁❁❁

सत्य भाषण

लेखकः प्रो० सुधाकर

सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा।
असतोमासद्गमय तमसोमाज्योतिर्गमय।।

झूठ से हानि–

आओ, अब हम इस बात का विचार करें कि असत्य भाषण से हमें क्या–क्या हानि होती है। सबसे प्रथम और सबसे बड़ी हानि तो यह है कि हम दूसरों की दृष्टि में विश्वास–पात्र नहीं रहते। लोग हमारी बातों का कोई मूल्य नहीं समझते। ''शेर आया, शेर आया, दौड़ना'' वाली कहानी तुमने सुनी होगी। एक बालक ऐसा कह कहकर अपने ग्राम–निवासियों को डराया करता था। अन्ततः उसका विश्वास जाता रहा और सचमुच एक दिन शेर के आने पर भी किसी ने उसकी सहायता न की और उसे विकराल काल के मुंह में जाना पड़ा। दूसरी हानि यह होती है कि झूठ का अभ्यास पड़ जाने पर पुनः झूठ के पंजे से निकलना कठिन हो जाता है। एक झूठ अपने आपको छिपाने दूसरे झूठ की सहायता चाहता है, और दूसरा तीसरे को, और तीसरा चौथे की। इस प्रकार झूठ का पाश हमें चारों ओर से घेर लेते हैं और उस समय हम निःसहाय प्राणी की तरह उसमें फंस जाते हैं। और पुनः जितना उस पाश से छूटने के लिए प्रयत्न करते हैं उतना ही उस पाश के बन्धन दृढ़ होते जाते हैं। हमारी दशा उस दीन हीन के सदृश हो जाती है जो चाहता हुआ भी अपने आपको संभाल नहीं सकता। इच्छा रखता हुआ भी अपनी सहायता नहीं कर सकता। तीसरी हानि यह है कि झूठ बोलने से हमारे मन की गंगा मलीन हो जाती है। हमारे हृदय में स्वच्छ भावों की तरंगें नहीं उठतीं। मलिन आत्मा अपने अन्दर शान्ति का अभाव देखने लग जाती है। अशान्त–चित्त व्यक्ति को न इस लोक का सुख मिलता है, न परलोक का। परिणाम यह होता है कि मिथ्याभाषी सदैव दुःखी रहने लग जाता है।

असत्य–भाषण से हमें सदैव डरते रहना चाहिए। परमात्मा ने हमें यह जिह्वा सत्य और प्रिय भाषण के लिए प्रदान की है। हमें उससे यही कार्य लेना चाहिए। संसार में हम देखते हैं, सत्यवादी लोगों की सदैव विजय होती है– 'सत्यमेव जयते नानृतम्'

यदि सब लोग सत्य का व्यवहार छोड़ दें, तो यह संसार नरक–धाम बन जाएगा। उस समय मनुष्यों की क्या दुर्दशा होगी इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि अध्यापक अपने विद्यार्थियों को सत्य–ज्ञान प्रदान न करें; यदि वैद्य अपने रोगी को रोग का निदान बतलाते समय सत्य बात न कहे; यदि धर्मोपदेश अपने धर्मानुयायियों के समक्ष अपनी धर्म–पुस्तकों में सच्ची बातों का उल्लेख न करें; यदि साहित्य–सेवी अपनी पुस्तकों में यथार्थ ज्ञान प्रकाशित करने का उद्योग न करे, तो मनुष्य जाति की जो हानि होगी उसका अनुमान नहीं हो सकता।

मिथ्याभाषण के कई सूक्ष्म स्वरूप भी मिलते हैं। उनको भी अपनी आँखों से ओझल नहीं रखना चाहिए।

1. **अत्युक्ति–** बात को अत्यंत विस्तृत रूप देकर प्रकट करना–साधारण घटना का वर्णन करते समय उसको ऐसा भयानक रूप दे देना कि उसके अन्दर सत्य का अंश बिल्कुल ही छिप जावे।

2. **अर्द्ध सत्य–** कई बार ऐसा भी होता है कि हम सत्य का पूर्ण प्रकाश नहीं करते। अपनी हानि तथा

लाभ की दृष्टि से सच्ची बात के केवल अंशमात्र को ही प्रकट करके सन्तुष्ट हो जाते हैं। परन्तु सत्य कहते समय हमें पूर्ण सत्य का ही प्रकाश करना चाहिए, सरलता को कदापि नहीं छोड़ना चाहिए। कृत्रिम सत्य, सत्य नहीं कहलाता। सत्य बनाया नहीं जाता। वह अनायास ही प्रकट होता है और एक ही स्वरूप धारण करता है। झूठ बनाना पड़ता है। इसलिए यह नाना रूप धारण कर सकता है।

3. आत्मवंचन– अपने प्रति झूठ बोलना अथवा अपने आपको धोखे में रखना–जब एक बालक अपने आपको इस बात से सन्तुष्ट कर लेता है कि मुझे अपना पाठ स्मरण है परन्तु सुनाते समय नहीं सुना सकता, तो उसने अपने प्रति झूठा विश्वास किया है और अपने आपको धोखे में रक्खा है। कई बार हम अपने अन्दर ऐसे गुणों का चिन्तन कर लेते हैं जो वस्तुतः हमारे अन्दर नहीं होते और उनके आधार पर हम कई ऐसे कार्यों का सम्पादन करना शुरू कर देते हैं जिनको पार नहीं लगा सकते। हमें अपनी भूल का ज्ञान पीछे होता है, परन्तु उस भूल का मूल कारण हमारी वह आदत है जिसके द्वारा हम अपने आपको धोखे में रखते हैं। यही आत्मवंचन हमारे अनेक कष्टों का कारण बनता है इससे बचते रहना चाहिए।

4. दोषारोपण– दूसरों पर बिना निश्चय किये दोष लगाना भी एक प्रकार का असत्य भाषण समझना चाहिए। बालकों में यह प्रवृत्ति बहुधा पाई जाती है कि जब कभी किसी के दोष का निर्णय हो रहा हो, तो वे व्यर्थ एक दूसरे का नाम ले लेकर उनकी ओर निर्देश करते हैं जिससे न केवल निर्णय ही कठिन हो जाता है अपितु निर्दोष के दोषी प्रतीत होने का भय रहता है।

5. दम्भ– अपने आचरण से मिथ्याभाषण करना अपने आपको ऐसे प्रकट करना जैसे हम वस्तुतः नहीं है। इसी को मक्कारी कहते हैं। इसी को अपने व्यवहार से दूसरों को ठगना कहते हैं। दम्भ की आदत हमारी नैतिक उन्नति में बड़ी बाधक सिद्ध होती है।

6. खुशामद– दूसरों को प्रसन्न करने के लिए उनके चरित्र में उन गुणों का आरोपण करना जो वस्तुतः उनमें नहीं पाए जाते। इसको खुशामद कहते हैं। लोग खुशामद अपने किसी स्वार्थ की सिद्धि के लिए करते हैं। यह अत्यन्त घृणित कायरता का सूचक है। इसके द्वारा हम अपनी आत्मा का हनन करते हैं। हमें ऐसी बातों को कहना और सुनना पड़ता है, जिन्हें हम अपने हृदय से अनुभव नहीं करते। सत्यवादी खुशामद और चापलूसी का कट्टर शत्रु होता है। जिस व्यक्ति के मन में सत्य का प्रेम नहीं होता उसी में खुशामद से दूर रहना चाहिए। खुशामदियों से और भी अधिक दूर रहना चाहिए। अपना स्वभाव ऐसा बनाओ कि कोई भी तुमसे खुशामद की आशा न कर सके और न ही तुम्हारे समक्ष में किसी दूसरे को खुशामद करने का साहस हो सके।

अपने जीवन को सफल जीवन बनाने के लिए, सत्य में प्रेम उपार्जन करने के लिए, सदैव प्रयत्न करते रहो। सत्य भाषण के लिए यदि कदाचित् कष्ट भी सहन करना पड़े तो उससे मत घबराओ। यदि तुम अपने व्यवहार से सत्य का समर्थन करोगे, तो तुम्हारे माता पिता, भाई बन्धु, इष्ट-मित्र सब तुम्हारा सम्मान करेंगे। यदि तुम अपने घर में सत्यभाषण की आदत को दृढ़ कर लोगे, तो संसार के किसी क्षेत्र में भी तुम्हारी पराजय होगी। जगत् के महापुरुषों के चरित्र आज हमें उज्ज्वल इसीलिए दीखते हैं कि वे सत्य पर सदैव सुदृढ़ रहे। सत्य के लिए उन्हें कष्ट सहने पड़े परन्तु सत्य के बल से ही अपने समय के पक्षपातों को, मिथ्या विश्वासों को और अन्ध परम्परा को उन्होंने दूर किया। सत्य का बल असीम है। इसका वही अनुभव कर सकता है जिसने सत्य भाषण की आदत ग्रहण करली हो; जिसके लिए झूठ अस्वाभाविक बन चुका हो। धन्य हैं वे बालक तथा बालिकायें जिनके माता-पिता ने बाल्यावस्था से ही उनको सत्यवादी बनाया है। वे ही जीवन-वृक्ष के मीठे फल चखेंगे, वे ही मनुष्य-जीवन के सच्चे आनन्द के भागी होंगे। ईश्वर स्वयं सत्यस्वरूप है। वह हम सबको सत्य-स्वरूप बनावें। ❁❁❁

सच्ची बात

रचियताः महाकवि शंकर

मेल को मेला लगा है, मार खाने को नहीं।
धर्म–रक्षा को टिके हो, जी दुखाने को नहीं॥
जन्म होता है भलों का, देश के उद्धार को।
प्रेम की पूजा भलाई, भूल जाने को नहीं॥
द्रव्य दाता ने दिया है, दान, भोगों के लिए।
गाढ़ने को दीन–हीनों, के सताने को नहीं॥
वीरता धारो प्रमादी, मोह के संहार को।
जाति–विद्रोही खलों में, मान पाने को नहीं॥
लौ लगी है ब्रह्म से तो, छोड़ दो संसार को।
ढोंग अज्ञों के अखाड़ों में दिखाने को नहीं॥
शंकरानन्दी बनो तो, वेद विद्या को पढ़ो।
पण्डिताई के कटीले, गीत गाने को नहीं॥

❋❋❋

पृष्ठ संख्या 21 का शेष–

(23) जैसे मित्र मित्र के साथ कार्य की सिद्धि के निमित्त प्रयत्न करता है वैसे ही ईश्वर से निर्मित बिजली वा सूर्य सम्पूर्ण कर्मकारियों का सहयोगी होता है।

(24) जो मनुष्य अहिंसा धर्म को स्वीकार कर और विज्ञान बढ़ाके परमेश्वर की प्राप्ति की चिकीर्षा करते हैं वे विस्तीर्ण सुख को प्राप्त होते हैं।

(25) हे मनुष्यों! जैसे विद्वान् जन परमात्मा की स्तुति और प्रार्थना करके उपासना करते हैं वैसे आप लोग भी उपासना करो और उसके सदृश वा उससे अधिक कोई भी नहीं ऐसा जानो।

(26) हे मनुष्यों! जो अद्वितीय, सबसे उत्तम, सच्चिदानन्द स्वरूप, न्यायकारी और सबका स्वामी है उसका त्याग करके अन्य की उपासना कभी न करो।

(27) हे मनुष्यों! तुम जिसकी योगी जन योग से उपासना करते हैं उसी का योगाभ्यास से ध्यान करो।

(28) सब मनुष्य विज्ञान आदि की प्राप्ति के लिये परमात्मा से ही याचना करें।

(29) हे मनुष्यों! जो परमात्मा हम सब लोगों के सम्पूर्ण दुःखों को बुद्धिदान से दूर करके अधर्माचरण से संकोचित करता है उस परमात्मा का आत्मा से निरन्तर ध्यान करो। ❋❋❋

॥ ओ३म् ॥

गुरूकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन (मथुरा) में प्रवेश प्रारम्भ

योगिराज भगवान श्रीकृष्ण की जन्मस्थली एवं युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती की दीक्षास्थली पवित्र ब्रजभूमि मथुरा में प्रखर राष्ट्रभक्त महाराजा श्री महेन्द्रप्रताप द्वारा प्रदत्त सुविस्तृत भूखण्ड में स्थित श्रद्धेय नारायण स्वामी जी की तपस्थली गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन में प्रवेश प्रारम्भ हो चुके हैं। प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण होने के उपरान्त ही विद्यार्थी को कक्षा 6 एवं 7 में योग्यता अनुसार प्रवेश दिया जा सकता है अथवा जिस विद्यार्थी को अन्य विषयों के साथ-साथ अष्टाध्यायी न्यूनतम 4 अध्याय कण्ठस्थ होगी, वह विद्यार्थी प्रवेश परीक्षा के उत्तीर्ण होने पर कक्षा 8 में भी प्रवेश पा सकता है।

गुरुकुल में प्राच्य व्याकरण के साथ-साथ अन्य सभी विषयों का गहनता से अध्ययन कराया जाता है। अतः विद्यार्थी का मेधावी होना आवश्यक है, इसलिए अभिभावक मेधावी, सुशील विद्यार्थी को ही प्रवेशार्थ लायें।

गुरुकुलीय परिवेश पूर्णतः वैदिक संस्कारों से परिपूर्ण है, इसके साथ ही भोजन, आवास एवं अध्ययनादि की व्यवस्था भी अति उत्तम है, आर्यजन इसका लाभ उठाकर अपनी संतानों को शिक्षित, सक्षम, संस्कारवान एवं चरित्रवान्, राष्ट्रभक्त तथा ऋषिभक्त बनाकर व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें।

बालक ब्रह्मचर्य व्रतधारें, धर्म कर्म भरपूर करें।
ब्रह्म-विवेक-प्रकाश पसारें, मोह महातम दूर करें॥
युक्ति प्रमाण-तर्क पटुता से, भ्रम को चकनाचूर करें।
पन्थ न पकड़ें मतवालों के, साधु स्वभाव न क्रूर करें॥
सरल सुलक्षण संतानों को, संयमशील सुजान करो।
गुरुकुल पूजो वैदिक वीरो, विद्या बल धन दान करो॥

आचार्य स्वदेश
कुलाधिपति
(चलभाष: 9456811519)

आचार्य हरिप्रकाश
प्राचार्य
(9457333425, 9837643458)

ऋग्वेद ।। ओ३म् ।। यजुर्वेद

श्री गुरू विरजानन्द आर्ष गुरुकुल वेदमन्दिर, मथुरा

का

वार्षिक–उत्सव

दिनांक 30, 31 जुलाई 2015

धर्मानुरागी सज्जनों!

आपके अपने गुरूकुल श्री विरजानन्द आर्ष गुरुकुल, वेदमन्दिर, मथुरा का वार्षिक उत्सव आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी और पूर्णिमा तदनुसार दिनांक 30 और 31 जुलाई 2015 दिन गुरूवार और शुक्रवार (गुरूपूर्णिमा) को होना निश्चित हुआ है। यह पर्व श्री गुरू विरजानन्द जयन्ती के रूप में मनाया जाता है। नवीन ब्रह्मचारियों की प्रवेश दीक्षा के कार्यक्रम के साथ विद्वानों, उपदेशकों और संन्यासियों के प्रवचन का उत्तम सुयोग रहेगा।

अतः इस अवसर को हाथ से न जाने दें आप सपरिवार आयें। भोजन व्यवस्था गुरूकुल में ही दोनों दिन रहेगी। कार्यक्रम आप सबका ही है अतः इसकी सफलता का दायित्व भी मिलकर ही निभायें।

दिल प्रफुल्लित हो रहा है, आप की ही चाह में।
यह जानकर ही आप आयें, दोगुने उत्साह में।।
मेरे बिना बिगड़ेगा क्या? यह सोचकर रूकना नहीं।
हर कदम का मूल्य होता, जिन्दगी की राह में।।

निवेदकः

प्रधान	मंत्री	अधिष्ठाता
डॉ0 सत्यप्रकाश अग्रवाल	बृजभूषण अग्रवाल	आचार्य स्वदेश

विशेषः गुरूकुल आने के लिए बस या ट्रेन से उतरने के बाद मसानी चौराहा पर स्थित है। वहाँ से पूर्व की ओर आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग (कच्ची सड़क) पर मात्र 100 पग चलकर गुरूकुल का मुख्य द्वार है।

सामवेद अथर्ववेद

व शक्तिहीन होते जा रहे हैं। इन सब दोषों से बचने का एकमात्र विकल्प आर्यवीर दल का प्रशिक्षण है। जिसमें युवकों को श्रेष्ठ बनाया जाता है। पण्डितजी ने आर्यवीरों को प्रेरित करते हुए कहा कि हम बदलेंगे युग बदलेगा। हम सुधरेंगे युग सुधरेगा। अलीगढ़ से आये आर्यवीर दल के संगठन मंत्री श्री भूदेव आर्य जी ने आर्यवीरों को संगठन का महत्व बताते हुए अंगीठी में जलते हुए कोयलों का उदाहरण दिया कि जब तक हम साथ रहेंगे कोयलों की भाँति चमकते रहेंगे। और जो हमसे टकरायेगा चूर-2 हो जायेगा। और अलग होने पर कोयले की भाँति काले पड़ जाओगे और शक्तिहीन हो जाओगे।

सभा को सम्बोधित करते हुए आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के अधिष्ठाता पंकज जी आर्य ने कहा युवा समाज की रीढ़ होते हैं। जो जितने मजबूत होंगे समाज उतनी ही उन्नति करेगा। अतः हमारे यहाँ इजरायल की भाँति सभी युवाओं को सैनिक शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। जिससे कोई भी हमें कमजोर समझने की भूल न करें।

अन्त में आर्यवीर दल के प्रधान व्यायाम शिक्षक हरीशरण आर्य ने सभी का हृदय से धन्यवाद देते हुए कहा कि इन कठिन परिस्थिति में जब मौसम भी अपने चरम पर है। इन बच्चों ने 10 दिन में जो प्रशिक्षण लिया है। यह इनके परिश्रम का फल है। जो इन्हें आजीवन मिठास देता रहेगा।

दीक्षान्त समारोह में आर्यवीर बलराम आर्य एवं राष्ट्रवसु आर्य ने अपने गीतों की प्रस्तुति से उपस्थित जनसमूह को मंत्रमुग्ध कर दिया और सब लोग खुश होकर झूम उठे। साथ ही आर्यवीरों के शारीरिक व्यायाम, जूडो-कराटे, दण्ड-बैठक, लाठी एवं रस्सा, मलखम के प्रदर्शन को देखकर उपस्थित जन-समूह दातों तले उँगली दबाकर वाह-वाह करने लगे।

अन्त में समापन भाषण देते हुए आचार्य श्री स्वदेश जी महाराज ने गुरुकुल के पुनरुत्थान के लिए माननीय श्री पद्मसेन गुप्त एवं उनकी पत्नी का हार्दिक धन्यवाद किया। जो उन्होंने भव्य छात्रावास ब्रह्मचारियों के लिए बनवाया। श्री कृष्णवीर शर्मा जी के गुरुकुल के लिए किये योगदान को बताया और गोपीनाथ वंशीधर फाउण्डेशन ट्रस्ट के वेदमन्दिर मथुरा और गुरुकुल वृन्दावन के पावन सहयोग के लिए माननीय श्री सुरेशचन्द्र अग्रवाल व फाउण्डेशन के सभी पदाधिकारियों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हुए यह आशा व्यक्त की भविष्य में इस परिवार का पावन सहयोग इसी प्रकार प्राप्त होता रहेगा। अन्त में सभी आर्यवीरों, शिक्षकों, आगन्तुकों का भी हार्दिक धन्यवाद किया और आशा व्यक्त की कि आगे भी ऐसे पुण्य कार्यों में सबका सर्वात्मना सहयोग प्राप्त होता रहेगा। ❁❁❁

श्री सुरेश चन्द्र जी प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा गुजरात प्रदेश का स्वागत करते हुये जिला उपप्रतिनिधि सभा, मथुरा के प्रधान श्री पं. विपिन बिहारी जी आर्य

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2015 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मो. 9759804182

...क, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिंग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित

Yogendra # 9927136600